आत्मा से परमात्मा

(पंच कल्याणक)

लेखक

प. रमेशचन्द्र जैन "बांझल"

शास्त्री, धर्मालकार, साहित्य रत्न,
आर्युवेद रत्न, डी ए टी , डी बी एम
डी एच.एम , डी एम , एम एच एम एस

प्राक्कथन

प. श्री नाथुलालजी शास्त्री
सहितासूरी, प्रतिष्ठाचार्य

प्रकाशक

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन लश्करी मदिर
म गा मार्ग (गोराकुण्ड) इन्दौर (म प्र)

आवृत्ति -

प्रथम आवृत्ति - ३१००

जनवरी १९९६

संवत् - २०५२

वीर निर्वाण सवत् - २५२१-२५२२

प्रकाशन -

सूकलिया ग्राम के पच कल्याणक

के मगल प्रसग पर

मूल्य - १०/-

प्राप्ति स्थान -

(१) श्री पा दि जै ल मदिर, गोराकुड, इन्दौर (म प्र)

(२) जैन तेजकुमार गगवाल, ६६/३, रामगज, इन्दौर ४५२००६

मुद्रक - **के भुषण** ६२५, महात्मा गाधी मार्ग, इन्दौर

ग्राफिक्स - **मेलोटोन टाईपोग्राफिक्स एण्ड कम्प्यूटर्स**

अजीज मेन्शन, ३१, खातीपुरा, इन्दौर • फोन ५३५१८७

प्रकाशकीय

प्रिय धर्मानुरागी भाई बहनो,

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन लश्करी मदिर गोराकुण्ड, इन्दौर मे चल रही धार्मिक गतिविधियो से तो आप परिचित ही हैं। गत दिनो मदिरजी से प्रथम पुष्प के रूप मे आदरणीय पडित श्री रमेशचन्दजी "बाझल" शास्त्री द्वारा लिखित "पाप, पुण्य और धर्म" नाम की पुस्तक "धर्मानुचिन्तन" के रूप मे प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तक की धर्मानुरागी जीवो में इतनी लोकप्रियता बढ़ी कि प्रथम आवृति के पश्चात इसकी द्वितीय आवृति के रूप मे ५,००० की सख्या मे अ भा दिगम्बर जैन परिषद, दिल्ली द्वारा प्रकाशन किया गया।

इसी लोकप्रियता की श्रृखला मे मदिरजी से द्वितीय पुष्प के रूप मे लोकप्रिय विद्वान आदरणीय प श्री रमेशचन्दजी 'बाझल' शास्त्री द्वारा लिखित "आत्मा से परमात्मा" का प्रकाशन किया जा रहा है। प्रस्तत पुस्तक मे जिन बिम्ब पच कल्याणक मे क्या किस प्रकार सम्पन्न करना चाहिये इस विषय पर विशद रूप से विवेचन किया गया है।

पुस्तक के लेखक श्री बाझलजी के हम आभारी हैं कि उन्होने लश्करी मदिर सस्था को अपनी पुस्तक प्रकाशन करने योग्य समझा है और अपनी स्वीकृति प्रदान की है।

इस पुस्तक के प्रकाशन का कार्य प्रसिद्ध धर्मानुरागी परिवार की कर्तव्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ महिला श्रीमती गीतादेवी पति श्री वीरचदजी जैन (मित्तल) नसीराबाद वाले, ४८, जूना पीठा मेनरोड़, इन्दौर (म प्र.) के विशेष सहयोग से हुआ है। श्रीमती गीतादेवी एक शात स्वभाव की, स्वाध्याय प्रिय, दानादि कार्यो मे अग्रसर रहने वाली महिला हैं।

जिन दान दाताओ ने पुस्तक की कीमत कम करने में सहयोग दिया है मै उनका आभारी हुँ।

मेरे भाई श्री तेजकुमारजी गगवाल जिनका सहयोग मुझे हर क्षेत्र मे हर पल मिलता रहता है इस पुस्तक के प्रकाशन में भी इनका भरपूर सहयोग मिला है। जिसे विस्मरण नही किया जा सकता है।

पूजन प्रक्षाल मडल, महिला मडल श्री पा दि जैन लश्करी मदिर ही हमारा परिवार है।

जय जिनेन्द्र ।

भवदीय,
विमलचन्द कानूगो
मत्री,
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला
लश्करी मदिर, गोराकुन्ड, इन्दौर (म प्र)

११/१, सुभाष नगर
इन्दौर (म. प्र)

लेखक का परिचय :

उदयमान लेखक पडित श्री रमेशचन्दजी "बाँझल" शास्त्री का जन्म प्रानपुर (चन्देरी) धार्मिक प्रवृति के परिवार मे हुआ। आपने इन्दौर मे सस्कृत महाविद्यालय जवॅरीबाग, नसिया मे आदरणीय प श्री नाथुलालजी सा शास्त्री के शिष्य रूप मे अध्ययन कर शिक्षा प्राप्त की, शास्त्री एव धर्मालकार की उपाधि भी यहाँ से प्राप्त की। प्रतिभा के धनी श्री बाझलजी ने अपने पुरूषार्थ के बल पर ही शिक्षा के अन्य क्षेत्र मे भी योग्यताऐ प्राप्त की हैं। आज आप श्री नेमीनाथ औषधालय मल्हारगज मे एक सफल वैद्य के रूप मे ख्याती अर्जित कर रहे हैं। आप यहा शुद्ध औषधि द्वारा नि शुल्क चिकित्सा निस्पृह भाव से कर रहे हैं।

आबाल-गोपाल सभी को जिनवाणी का मर्म समझ मे आवे ऐसी सरल शैली द्वारा करीब १५ वर्ष से आप श्री नेमीनाथ दि जै रामाशाहजी मदिर मल्हारगज पर शास्त्र प्रवचन कर रहे हैं। आप एक सफलतम प्रतिष्ठाचार्य भी हैं।

आपकी अन्य रचनाऐ तत्वार्थ सूत्र टीका "पाप पुण्य और धर्म" सल्लेखना एक अनुचिन्तन, पुरूषार्थ सिद्धि उपाय टीका जिनेन्द्र पूजन आदि है।

६६/३, रामगज, इन्दौर (म प्र)

तेजकुमार गगवाल
प्र मत्री
श्री दि जै ध शि स समिति, इन्दौर

-: आत्म निवेदन :-

विद्यावर्द्धन ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जून १९९३ जवेरीबाग, नसिया मे सैद्धान्तिक एव वर्ष १९९४ में सूकलिया ग्राम, इन्दौर में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर प्रशिक्षण शिविर मे पण्डित श्री नाथुलालजी सा शास्त्री के सहयोगी के रूप में पचकल्याणक सबन्धि विषयो पर शिक्षण एव प्रशिक्षण देने का अवसर प्राप्त हुआ। शिक्षण प्रशिक्षण मे सम्मिलित सभी प्रतिष्ठाचार्यों ने उसे प्रकाशन करने की प्रेरणा दी।

श्री दिगम्बर जैन मारवाड़ी मदिर मे विधान के अवसर पर "पचकल्याणक एक झलक" पर प्रवचन हुए, उसे श्रवण कर श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन लश्करी मदिर के स्वाध्यायी बन्धुओ द्वारा यह प्रकाशन करवाया गया जो आपके हाथो मे है।

मेरी यह भावना है कि, "आत्मा से परमात्मा" यह प्रति सभी प्रतिष्ठाचार्यों एव भव्यजनो को हितकर हो। इस रचना द्वारा प्रतिष्ठाचार्य पचकल्याणक महोत्सव कराते समय ऐसा प्रदर्शन करे कि दर्शको, श्रोताओ का हृदय सवेग एव वैराग्य भाव से ओत-प्रोत हो जावे। दिक्षा कल्याणक में जिनेन्द्र देव के उन भावो का प्रतिपादन करे जिसके कारण लौकातिक एव इन्द्रादिक देव आये। वन मे. दिक्षा के समय मुनि श्री द्वारा या विद्वान, तीर्थंकर परमात्मा के प्रखर वैराग्य मय भावो का ऐसा वर्णन करे कि भव्यों का हृदय मुनिधर्म अगीकार करने को अगडाई लेने लगे। ज्ञान कल्याणक मे तीर्थंकर मुनि के परिणामो का मर्मस्पर्शी व्याख्यान करे कि भव्यो को श्रेणी आरोहण करना सहज और सरल प्रतीत हो। समवशरण मे सौधर्म इन्द्र के द्वारा १००८ नामो के माध्यम से जिनेन्द्र स्तुति करावे, पूजन करावे।

मोक्ष कल्याणक मे अयोगी गुणस्थान से लेकर सिद्धो के निराबाध सुख का प्रतिपादन करे, जिसे सुनकर उपस्थित जनसमूह निराबाध सिद्धो के सुख को प्राप्त करने के लिये लालायित हो जाये।

इस कृति मे जितने आर्ष ग्रन्थो को आधार बनाया उन ग्रथकार आचार्यों

को त्रियोग से कोटि कोटि नमन। प आशाधरजी एव स्व डॉ श्री नेमीचदजी ज्योतिषाचार्य का भी आभारी हूँ। मेरे गुरूवर्य प श्री नाथूलालजी सा शास्त्री का कृतज्ञ हूँ, जिनके निर्देशन में मैने पच कल्याणक सबधी विषयो का ज्ञान प्राप्त किया है।

श्री पा. दि जैन महिला मडल तथा पूजन प्रक्षाल मडल श्री पा दि जै. लश्करी मदिर गोराकुण्ड के सदस्यो के प्रति आभार व्यक्त करता हुँ। इस पुस्तक के प्रकाशन का कार्य धर्मनिष्ठ महिला श्रीमति गीता देवी धर्मपत्नि श्री वीरचन्दजी जैन, नसीराबाद वाले, इन्दौर के सहयोग से हुआ है अत उनका भी विशेष आभारी हुँ।

अत मे सुविज्ञजनो से विनम्र अनुरोध है कि, वीतराग विज्ञान वर्धक अपने अ'मूल्य सुझाओ से मुझे अवगत करावे, मैं उनका भी आभारी रहूगा।

रमेशचन्द बाझल
७४, छत्रपति नगर, इन्दौर

अरहंतादिक के पूज्यत्व का कारण

इन अरहतादिक का स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय है। उस ही के द्वारा अरहतादिक स्तुति योग्य महान हुए हैं। क्योकि जीव तत्व की अपेक्षा तो सर्व जीव ही समान है, परन्तु रागादि विकारो से व ज्ञान की हीनता से जीव निन्दायोग्य होते है और रागादि की हीनता से व ज्ञान की विशेषता से स्तुतियोग्य होते हैं, सो अरहतसिद्धो के तो सम्पूर्ण रागादि की हीनता और ज्ञान की विशेषता होने से सम्पूर्ण वीतराग-विज्ञान भाव सम्भव हैं और आचार्य, उपाध्याय तथा साधुओ को एकदेश रागादिक की हीनता और ज्ञान की विशेषता होने से एकदेश वीतराग भाव सम्भव है। इसलिए उन अरहतादिक को स्तुति योग्य महान जानना ।

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक)

- प्राक्कथन -

जैन धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है। "निवृत्ति रूप यतस्तत्व" । अनादिकाल से यह जीव रागद्वेष मे प्रवृत्ति कर रहा है, अत उनसे निवृत्ति अर्थात आत्म स्वरूप मे प्रवृत्ति धर्म है। इसी का दूसरा नाम चारित्र है। मोक्ष प्राप्ति का साक्षात (उत्सर्ग) मार्ग मुनिधर्म है। उसकी असमर्थता के कारण अपवाद मार्ग गृहस्थ धर्म है। धर्म के आलम्बन से आत्म विशुद्धि एव स्वावलबन की दिशा मिलती है। गृहस्थ जीवन मे देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय सयम तप और दान ये कर्म प्रतिदिन आवश्यक है। देवपूजा सम्यग्दर्शन के साधनो मे सम्मिलित है। पूजा का फल वासना का त्याग है, भक्ति या पूजा परमात्मत्व को अपनी और खीचने का प्रयत्न है। अर्हन्त परमात्मा सदा और सर्वत्र विद्यमान नही रहते हैं इस कारण उनके गुणो के स्मरणार्थ और भक्तिभाव प्रकट करने के लिये उनकी प्रतिमा का निर्माण और प्रतिष्ठा की जाती है। वे प्रतिमाए जिन चैत्यालयो मे विराजमान है उनमे परमात्मा के वीतरागादि गुणो की स्थापना की गई है। अत स्थापना (मत्र पूर्वक प्रतिष्ठा) होने से प्रत्यक्ष रूप मे वह जिनेन्द्र की पूजा ही मानी जाती है।

पूजा के छह भेद है - (१) नाम (२) स्थापना (३) द्रव्य (४) क्षेत्र (५) काल (६) भाव। उक्त भेदो मे द्वितीय भेद स्थापना का वर्णन इस ग्रथ मे है। तदाकार मूर्ती मे अरहन्त आदि के गुणो का आरोपण करना।

इस ग्रन्थ मे गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्षकल्याणक की घटनाओ का सुन्दर विवेचन किया गया है। जिनबिब पचकल्याणक प्रतिष्ठाऐ वर्तमान मे होती रहती है उनमे किस कल्याणक मे क्या किस प्रकार कथन करना चाहिये यह विशद उल्लेख विद्वान लेखक ने अपनी लेखनी द्वारा करते हुए प्रतिष्ठाचार्यों को मार्गदर्शन एव दर्शको को कल्याणक दृश्यो का रहस्य जानने हेतु परिश्रम किया है। ग्रन्थ मे प श्री आशाधरजी द्वारा रचित जिन सहस्रनाम के १००८ पदो का हिन्दी मे अर्थ भी किया गया है। जो कि ग्रथ की विशेषता है। दिगम्बर जैन मदिरो मे सर्वत्र पच कल्याणक मत्रो से प्रतिष्ठित अर्हन्त, सिद्ध परमेष्ठियो की प्रतिमाए विराजमान होती है। विशेष यह है कि अर्हन्त प्रतिमा मे चार कल्याणक होते हैं और उनके अष्टप्रातिहार्य व

चिन्ह होते हैं। सिद्ध प्रतिमा मे आकार व मूर्ति तो अर्हन्त सदृश्य ही होती है केवल अष्ट प्रतिहार्य व चिन्ह नहीं होते। उनकी मत्र प्रतिष्ठा भी नहीं होती। पोल आकार की प्रतिमा शास्त्रोक्त नहीं है। सिद्ध प्रतिमा की प्रतिष्ठा के मत्र पृथक् हैं। बिंबप्रतिष्ठा महोत्सव मे निर्वाण कल्याणक प्रतिमा के न होकर दर्शको को प्रतिष्ठा का पूर्ण दृश्य बताने हेतु निर्वाणभक्ति व पूजा की जाती है।

दिव्यध्वनि द्वारा केवली अवस्था मे तीर्थंकरो के भव्य जीवो को धर्मोपदेश देने के उपकार व सर्वोत्कृष्ट पुण्य प्रकृति तीर्थकर नाम कर्म का महात्म दर्शाने के उद्देश्य से उनके पच कल्याणक इद्रादि द्वारा किये जाते हैं। नाम निक्षेप से इन्द्रादि चतुर्णिकाय देवो के साथ गर्भादिक कल्याणक मनाते हैं। हम यहाँ स्थापना निक्षेप द्वारा इन्द्रादि बनकर महोत्सव करते हैं।

वर्तमान मे प्रतिष्ठाओ मे बहुत से क्रिया काण्ड प्रतिष्ठा विधि के विपरीत चल रहे हैं जैसे - तीर्थंकर के माता-पिता बनाना, दक्षिणायण मे बिंब प्रतिष्ठा करना, चरण प्रतिष्ठा मे चरण के अग का आकार बनाना आदि।

हमे प्रतिष्ठा और मदिर, मान स्तभ, मूर्ति निर्माण सबधी कार्यों मे सावधानी रखना चाहिये। तीर्थंकर के पचकल्याणक का स्वरूप चिंतवन करने वालो के पच परावर्तन रूप ससार परिभ्रमण का दु ख दूर हो जाता है। ऐसे पुण्यवान सत्पुरूष पचम गति को प्राप्त करते हैं।

प श्री रमेशचन्दजी "बाझल" शास्त्री एक उदीयमान निष्पक्ष लेखक हैं, श्री बाझल प्रवचनकार एव प्रतिष्ठाचार्य भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक लिखकर इन्होने पचकल्याणक सबधी अपनी विद्वता का परिचय दिया है। मैं इनके भविष्य की सफल भावना करता हूँ। आशा है इस ग्रन्थ मे प्रतिष्ठा व अन्य विवेचनो से पाठकगण लाभ उठायेगे। प्रतिष्ठाचार्य इस पुस्तक का भलि भाति अध्ययन कर वीतरागता की प्रसिद्धि कर लाभ उठायेगे।

पं. नाथूलाल शास्त्री
प्राचार्य, सर हुकमचन्द सस्कृत महाविद्यालय,
जवँरीबाग, नसियाँ, इन्दौर (म प्र)

विषय सुचिका

पुस्तक की कीमत कम करने वालों दातारो की सूची

१००१/-	श्रीमति नन्हीबाई धर्मपत्नि श्री सोनेलालजी जैन
१००१/-	गुप्तदान हस्ते श्री अशोकजी कासलीवाल
७०१/-	श्रीमति आशादेवी जैन
५०१/-	श्री लड्डुलालजी जैन
५०१/-	श्री विजयकुमार सुमतचन्द जैन दादर बाम्बे
५०१/-	श्री अप्सरा चाय श्री सूरजमलजी जैन
५००/-	श्री राजेन्द्रकुमारजी कागदी
२५१/-	श्री पारसचन्दजी जैन
२५१/-	श्री रमेशचन्दजी जैन
२०१/-	श्री अनिल कुमारजी जैन
२०१/	गुप्त हस्ते श्री तेजकुमारजी गगवाल
२०१/	पूज्य माताजी एव श्रीमति तीजी बाई रावँका के स्मृति मे श्री प्रमोदचन्द्र प्रहम्नकुमार अभयकुमार, अजयकुमार रॉवका
१५१/-	श्री मागीलालजी जैन
१२५/-	*गुप्त हस्ते श्री सागरमलजी गगवाल*
१०५/-	श्रीमति शशीप्रभा सागोनी
१०१/-	श्रीमति मजुला पाटनी
१०१/-	गुप्त हस्ते प श्री रमेशचन्दजी बाझल
१०१/-	श्रीमति नीलकठ कालोनी
१०१/	श्रीमति सुलोचना मॉंचलवाला बडजात्या
१०१/-	श्री दिलीपकुमारजी जैन
१०१/-	श्री प्रकाशचन्दजी जैन
१००/-	श्रीमति मालती जैन
१००/-	श्रीमति शैलकुमारी श्रीकान्तजी जैन
१००/-	श्रीमति प्रेमलता जैन नरसिंगपुरा
१००/-	श्रीमति सुलोचना जैन नरसिगपुरा
१००/-	श्री अनिलकुमाजी जैन
५१/-	गुप्त
५१/-	श्रीमति प्रेमलता जैन
५१/-	श्रीमति सुमनबाई कटारिया
५१/-	श्री तिलोकचन्दजी जैन
५१/-	श्रीमति जयमाला जैन
५१/-	श्रीमति सोगानी
५०/-	श्रीमति अर्चना जैन
५०/-	श्रीमति शिवरतनजी गर्ग
५०/-	गुप्त दान
३१/-	श्रीमति विनोद जैन

तीर्थंकर महावीर के पूर्व भव

जैन दर्शन में तीर्थंकर परम्परा अनादि कालीन है। "तीर्थंकर" तीर्थ उपपद कृञ + अप् से निष्पन्न है। तथा "तीर्थ" भी तृ + थक् से प्रसूत है। **"तरति पापादिकं यस्मात् इति तीर्थम्"** अर्थात जिसके द्वारा पापादिको से पार हुआ जाय वह तीर्थ है। अथवा **"तीर्यते ससारमहार्णव येन तत् तीर्थम्"** अर्थात् जिससे ससार महार्णव से पार हुआ जाय वह तीर्थ है। तीर्थ का अभिधागत अर्थ पुल/गुरु है और लाक्षणिक अर्थ धर्म है।

देश काल के प्रभाव से जब मोक्ष मार्ग मे विकृतिया, शिथिलता बढ़े या तीर्थ विलुप्त होने लगे, उस समय पूर्व तीर्थंकरो की परम्परानुसार अविकल विशुद्धरूपेण तीर्थ स्थापक को तीर्थंकर कहते है। "तीर्थंकर" शब्द महिमाशाली, वीतराग, नि स्वार्थ, निर्भीक, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय के लिए प्रयुक्त होता है। तीर्थंकर पद का धारी व्यक्ति ससार समुद्र से पार होने का मार्ग निष्पृहता से पुन स्थापन करता है। अर्थात् मोक्षमार्ग का प्रवर्तक युग पुरुष तीर्थंकर कहलाता है। उनकी वीतराग मय अध्यात्म साधना जगत् के जीवो को द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व से समानता का उपदेश देती है।

तीर्थंकरो की परम्परा मे तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ के लगभग २५० वर्ष के उपरान्त अन्तिम चौबीसवे तीर्थंकर महावीर हुए। उन्होने आत्म कल्याण के लिए अनेक जन्मो मे अनेक साधनाएँ की है। वे आत्मानुभूति के क्रम मे कभी पथ भ्रष्ट हुए तो कभी साधना के सर्वोच्च शिखर पर चढ़े।

हे दर्शक श्रोताओ! उनकी जीवन झाकी सावधानतया श्रवण करे एव देखे एक हिसक दस्यु पुरुरवा भील तीर्थंकर महावीर कैसे बने।

तीर्थंकर महावीर बनने की मगल साधना का आरम्भ भील पुरुरवा के जीवन से प्रारम्भ होता है। पुरुरवा को झाड़ियो के झुरमुट मे शात मुद्रा स्थित कोई शिकार दिखाई दिया। उसने अनुमान लगाया कि झुरमुट मे अवश्य जगली जानवर है। उसका वध करने को धनुष बाण उठाया, तुरन्त भद्र

परिणामी दयालु उसकी पत्नी कालिका ने बाण चलाने से रोका और कहा - "नाथ! वहाँ शिकार नही है शान्त मुद्रा धारी कोई वन देवता है। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, इन्हे मत मारिये, इन्हे मत मारिये। पुरुरवा विस्मय होकर कहता है, क्या कहती हो!" कालिका ने कहा "हाँ नाथ ! मैं सत्य कहती हूँ, आप स्वय चलकर देख लीजिए।" पुरुरवा झुरमुट की ओर चला, वहाँ उसने ध्यानस्थ मुनि को देखा। उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। उसका मन भक्ति से विभोर हो गया। पति-पत्नी ने मिलकर उन सागरसेन योगिराज की वंदना की। ध्यानोपरान्त सागरसेन मुनिराज ने पुरुरवा को निकट भव्य समझ, धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया "हे भील! मोह मे क्यो पड़े हो, सम्पूर्ण जगत् स्वार्थी एव विषय् लोलुपी है। धन-धान्य आदि अनित्य हैं। अशरण जगत् मे कोई शरणभूत नही है। जीव अकेला ही चार गतियो मे भ्रमण करता है और एकाकी मोक्ष जाता है। हिंसादि पापो से नर्क आदि, पुण्यादि कार्यों से स्वर्ग और आत्म साधना से मोक्ष पाता है।"

मुनिवर के उपदेश से भील प्रभावित हुआ। उसने तत्क्षण मुनीन्द्र के समक्ष अहिंसा आदि अणुव्रतो को धारण किया। व्रतो के आचरण से पुरुरवा का जीवन ही बदल गया। आयु के अन्त मे निर्ममत्व भाव से शरीर को छोड़कर स्वर्ग मे देव हुआ। इस प्रकार महावीर के जीवात्मा ने आत्मोत्थान की साधना भील पर्याय से प्रारम्भ की थी।

मारीचि पर्याय :-

स्वर्ग मे पूर्व सस्कार से वह वहाँ के भोगो मे आसक्त न हुआ। सौधर्म स्वर्ग से च्युत हो भरत चक्रवर्ती के यहाँ अनतमती रानी के गर्भ से मारीचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

मारीचि आदि ने तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के समय गुरु भक्ति से प्रेरित हो कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। किन्तु निर्ग्रन्थ चर्या का पालन न कर सका। आदीश्वर का मार्ग सर्वोत्कृष्ट है, किन्तु सभी को अनुकरण करना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। इसलिए सामान्य जनो को दृष्टि मे रखते हुए इस मार्ग मे सरलीकरण किया जावे, ऐसा विचार कर मार्ग को

सरल करने के प्रचार मे सलग्न हो गया जिससे उसका उत्थान, पतन में परिवर्तित हो गया।

पुरुरवा के जीवन मे अर्जित किये संस्कार धूमिल हो गए। अध्यात्म शून्य तपश्चरण के फलस्वरूप ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ। ज्ञान-वैराग्य से भ्रष्ट हो भोगो मे मग्न रहने लगा। वहाँ से भोग-भोग कर मनुष्य पर्याय प्राप्त की।

जटिल पर्याय :-

महावीर स्वामी का जीव ब्रह्म स्वर्ग से च्युत होकर अयोध्या नगर मे कपिल ब्राह्मण की पत्नी काली के गर्भ से जटिल नाम का पुत्र हुआ। जटिल ने मिथ्या-पोषक ग्रन्थो का विशेष अध्ययन करके, कुमार अवस्था मे ही सन्यास धारण कर लिया। जटिल आगम के विरुद्ध अर्थ कर लोगो को कुमार्ग की शिक्षा देने लगा। अध्यात्म-ज्ञान शून्य कठिन साधना सफल न हो सकी। विषयो की मदता पूर्वक वह आयु पूर्ण कर प्रथम स्वर्ग मे देव हुआ।

पुष्यमित्र पर्याय :-

महावीर स्वामी का जीव सौधर्म स्वर्ग से च्युत हो, अयोध्या के स्थूणागार नगर मे भारद्वाज ब्राह्मण की पत्नी पुष्पदत्ता से पुष्यमित्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पूर्व सस्कार वश अल्प वय मे प्रकाण्ड विद्वान बन गया। पत्नी का देहावसान हो जाने के कारण उसके मन मे विरक्ति उत्पन्न हो गई। उसने सन्यास ग्रहण कर लिया। आत्मा-अनात्मा के ज्ञान बिहीन साधनाएँ ससार-शरीर पोषक होने लगी। फिर भी मद कषाय के बल से प्रथम स्वर्ग मे देव हुआ। देव पर्याय मे भोगासक्त हो गया। क्षण भर के लिये भी शाति का वेदन नही हुआ। मिथ्या साधना आवर्तक गणितानुसार बढ़ने लगी।

अग्निसह पर्याय :-

महावीर स्वामी का जीव स्वर्ग से च्युत हो श्वेतिक नगर मे अग्निभूत

ब्राह्मण की पत्नी गौतमी से अग्निसह नामक पुत्र हुआ। सासारिक एव शारीरिक भोगो मे तन्मय हो गया। पूर्व सस्कार के बल से सन्यासी बन गया। हठ योग साधना करने लगा। प्राणायाम आदि योगाभ्यास से मोक्षमार्ग प्ररूपण करने लगा। कठिन तपश्चरण के फलस्वरूप स्वर्ग मे देव बना।

स्वर्ग के दिव्य भोगो को भोगते हुए भी विषय भोगो से तृप्ति नही मिली अपितु अग्नि मे घृत डालने की भाँति भोगो की लालसा बढ़ती गई।

अग्निमित्र पर्याय :-

स्वर्ग से च्युत हो अग्निमित्र नाम का साधु हुआ। कठोर तपश्चरण के फलस्वरूप पुन स्वर्ग मिला।

त्रिदण्डी पर्याय :-

स्वर्ग से च्युत हो त्रिदण्डी साधु हुआ। कठिन तपस्या कर पुन स्वर्ग प्राप्त किया। स्वर्ग के भोगोपभोग अत्यल्प भासने लगे। अत समय अति सक्लेश भाव के कारण वहाँ से चय कर स्थावर आदि अनेक कुयोनियो मे भ्रमण करने लगा।

पूर्व सचित कर्मोदय से उसने मनुष्य जन्म पाया। उसे सार्थक करने के लिए उसने सन्यास ग्रहण कर लिया। आत्मानुभूति के अभाव से वह आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त न हो सका।

पुरुरवा भील की पर्याय मे अर्जित वीतराग मार्ग के सस्कार मारीचि पर्याय तक ला सका। उसके बाद पतन की ओर बढ़ गया।

किन्तु विश्वनदी की पर्याय मे पुन एक नया मोड़ आता है। और वह जैनेश्वरी दीक्षा अगीकार कर लेता है।

जिन सुमरो जिन चिन्तवो, जिन ध्यावो मन शुद्ध ।
लहो परम पद क्षणिक मे, होकर के प्रतिबुद्ध ।।

(योगीन्दुदेव, योगसार)

विश्वनंदी पर्याय :-

राजगृह नगर मे राजा विश्वभूति के यहाँ विश्वनंदी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विश्वनंदी शैशव अवस्था मे ही प्रतिभाशाली तेजस्वी एव पराक्रमी दिखलाई पड़ता था। अल्प वय मे राजनैतिक, युद्धकला, ज्योतिष, वैद्यक, धार्मिक आदि सभी विद्याओ का अध्ययन कर पारगत हो गया। उसका अनेक सुकोमल सुन्दरियो से विवाह सम्पन्न हुआ। आत्म कल्याण की प्रबल भावना के कारण वह भोगो मे आसक्त न हुआ।

एक दिन विश्वभूति ने अपने भाई विशाखभूति को बुलाकर उन्हे राज्य सौंप दिया और मुनि दीक्षा अगीकार कर देशान्तर मे विहार कर गये।

विशाखभूति ने विश्वनदी को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। युवराज ने अपने लिये उपवन क्रीड़ा हेतु एक सुन्दर वाटिका लगवाई।

एक दिन राज्य मे अचानक वक्रता का मोड़ आता है, समाचार प्राप्त होता है कि कामरूप नरेश राजाज्ञा का पालन नही कर रहा है। अपने को स्वतत्र घोषित कर दिया है।

इस समाचार से विशाखभूति अति चितित हुआ। उसने सभा मे विद्रोह शमन का प्रस्ताव रखा, सभी सभासदो ने करतल ध्वनि से स्वीकार किया।

सभा के विचारो को सुनकर युवराज विश्वनदी ने आग्रह किया - तात् मेरे रहते हुए आपको युद्ध भूमि मे जाने की आवश्यकता नही है। आप मेरे पराक्रम पर विश्वास कीजिये। मैं थोड़ी सी सेना के सहयोग से राजविद्रोही कामरूप नरेश को बदी बनाकर आपके सामने उपस्थित कर दूगा।

युद्ध का बिगुल बजाया गया। दोनो ओर से सेना लड़ने को तैयार हो गयी। राजगृह की कुशल सेना के सहयोग से विश्वनदी कामरूप नरेश को बदी बनाकर ले आया।

इस बीच विशाखनंदी ने, विश्वनदी की वाटिका पर अधिकार कर

लिया। युवराज जब वाटिका विहार के लिये पहुँचा तो विशाखनंदी द्वारा नियुक्त पहरेदारो ने शीश नवाकर रोका और कहा आपके जाने के बाद उसने वाटिका अपनी घोषित कर दी। और हमे आज्ञा दी है कि मेरी आज्ञा के बिना वाटिका मे किसी को प्रवेश न दिया जाय।

विश्वनदी विचार करने लगा। निरीह प्रतिहारियों से युद्ध करना व्यर्थ है। यहाँ बुलाकर परस्पर वार्ता द्वारा हम दोनो की मिथ्या धारणा दूर कर लेना चाहिये। उन्होने प्रतिहारियो द्वारा अपने विचार विशाखनदी के पास भेजे। प्रतिहारियो द्वारा उक्त विचारो को सुनकर विशाखनदी कुपित हो गया और विश्वनदी को लड़ने के लिये ललकारने लगा। विश्वनदी को पास आता देखकर विशाखनदी भयाक्रात हो उन्नत वृक्ष पर चढ़ गया। विश्वनदी ने उस वृक्ष को उखाड़ फेका। विशाखनदी वहाँ से भागा और एक पाषाण स्तभ के पीछे छिप गया। शक्तिशाली विश्वनदी ने अपने पराक्रम का परिचय बताने हेतु अपनी मुष्टिका के प्रहार से उस पाषण स्तभ को चूर-चूर कर डाला। विशाखनदी भयभीत हो भागने लगा तब विश्वनदी के कोमल हृदय मे करुणा जाग्रत हुई। उसने कुमार से कहा - रुको । भय मत करो, तुम मेरे भाई हो, मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार नही करूगाँ। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय मे ममता है। मैं तुम्हे अपनी वाटिका देने को तैयार हूँ।

विश्वनदी ने विशाखनदी को वाटिका सौंपकर आत्म कल्याणार्थ जैनेश्वरी दीक्षा स्वीकार कर ली। दिगम्बर जैन मुनि बन कर देश-देशान्तरो मे विहार करते हुए घोर तपश्चरण किया। उनका शरीर वृद्ध अवस्था के कारण अत्यन्त जर्जर हो गया था। मथुरा नगर मे आहारचर्या को निकले थे। रास्ते मे प्रसूता गाय ने उन्हे गिरा दिया। यह सब दृश्य विशाखनदी वेश्यालय से देख रहा था। वह वेश्यालय से बाहर आया और द्वार पर खड़ा होकर चिल्लाने लगा - "तुम्हारा जो पराक्रम वृक्ष उखाड़ते, पाषाण स्तम्भ तोड़ते देखा गया था, वह कहाँ गया। इस समय मैं तुम्हारे प्राण हर सकता हूँ, तुम्हे यमराज के पास पहुँचा सकता हूँ यदि शक्ति है तो आओ मेरा सामना करो।"

इस प्रकार के दुर्वचनो को सुनकर मुनि के मन मे विचार आया कि

प्रत्येक जीव अपने किये गये परिणामो का फल पाता है। मुनिराज बिना चर्या किये ही लौट आए और सल्लेखना व्रत अगीकार कर लिया। आयु पूर्ण कर महाशुक्र स्वर्ग मे देव पर्याय को प्राप्त किया।

त्रिपृष्ठ पर्याय :-

विश्वनदी का जीव स्वर्ग से च्युत हो प्रजापति महाराज की दूसरी रानी मृगावति से त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ। वह शैशव से ही शूरवीर और तेजस्वी था। कुमार अल्पवय मे कला मे पारगत हो गया।

विशाखनदी का जीव स्वर्ग से च्युत हो मयूरग्रीव नामक विद्याधर की पत्नी नीलाजना से अश्वग्रीव नाम का पुत्र हुआ। यह भी युद्धकला मे निपुण था।

त्रिपृष्ठ का विवाह ज्वलनजटी विद्याधर की पुत्री स्वयप्रभा के साथ सम्पन्न हुआ। स्वयप्रभा का सौन्दर्य तिलोत्तमा के सौन्दर्य को लज्जित करता था।

अश्वग्रीव ने स्वयप्रभा का त्रिपृष्ठ से विवाह का समाचार सुना तो अश्वग्रीव क्रोधाग्नि से जलने लगा। स्वयप्रभा का विवाह मेरे साथ होना चाहिये था।

अश्वग्रीव ने त्रिपृष्ठ पर चढ़ाई कर दी। दोनो मे घमासान युद्ध होने लगा। युद्ध मे पराजय होना सम्भावित जान अश्वग्रीव ने त्रिपृष्ठ को मारने हेतु चक्र चला दिया। चक्र त्रिपृष्ठ की प्रदिक्षणा देकर दाहिने हाथ पर आ रुका। त्रिपृष्ठ ने वही चक्र अश्वग्रीव पर चला दिया जिससे वह मरण को प्राप्त हुआ। त्रिपृष्ठ ने सर्वत्र विजय प्राप्त कर अर्द्धचक्री पद प्राप्त कर लिया।

त्रिपृष्ठ की प्रवृत्ति इन्द्रिय विषयो की ओर बढ़ने लगी। वह अनेक सुकोमल रमणीयो के साथ रमण करता हुआ अर्द्धचक्री पद का भोग करने लगा। वह आरम्भ परिग्रह मे आसक्त हो मरण कर सप्तम नरक मे जा पहुँचा। ३३ सागर की आयु पूरी कर सिह पर्याय को प्राप्त किया। क्रूर

परिणामो के कारण पुन नरक चला गया। एक सागर की आयु पूर्ण कर पुन सिंह पर्याय धारण की।

एक दिन सिंह हिंसा मे प्रवृत्त मृग पकड़ने दौड़ रहा था। उस समय आकाश मार्ग से अजितजय मुनिराज अमितगति मुनिराज के साथ जा रहे थे। उन्होने हिंसारत उस सिंह को देखा। उनका हृदय दया से द्रवीभूत हो गया। वे आकाश मार्ग से उतर कर दूर पाषाण शिला पर बैठकर धर्मोपदेश करने लगे। सिंह के कानो मे मुनि के वचन सुनाई दिये वह मृग का पीछा छोड़ उनके पास गया और धर्मामृत पान करने लगा। मुनिराज ने सम्बोधन किया - "हे मृगेन्द्र तुम हिसा मे क्यो प्रवृत्त हो?, क्या विषयो से तृप्ति नही हुई? हे भव्य ! त्रिपृष्ठ के भव मे तुमने पचेन्द्रियो के श्रेष्ठ विषयो को भोगा है। कोमल शय्या पर अनेक सुकुमार सुन्दरियो के साथ क्रीड़ा की है। उत्तमोत्तम व्यजनो का उपभोग किया है। सुरभित सुमनो की सुगध से घ्राण इन्द्रिय को तृप्त किया है। रस-भाव समन्वित हाव-भावो से युक्त नृत्य देखा। सगीत की मधुर झकारो से कर्णेन्द्रिय का पोषण किया। अर्द्ध चक्रवर्ती की पर्याय मे सभी प्रकार के भोगो को भोगा है। वीतराग मार्ग से विमुख रह नरकायु का बध कर ३३ सागर पर्यन्त असह्य कष्टो को सहा। वहाँ से निकल सिंह पर्याय धारण की। क्रूर परिणामो से पुन एक सागर तक नरक मे व्यतीत कर पुन सिंह पर्याय मिली है। हे भव्य आत्मन्! विचार करो - आत्मा क्या है, उसका क्या स्वरूप है, इस प्रकार के भावो से क्या फल लगेगा। ससार के स्वरूप का विचार कर हिंसा का त्याग करने मे ही तुम्हारा कल्याण है।"

मुनिराज के उपदेश से सिंह को अपनी पूर्व भवो की कलकित जीवन झाँकी ज्ञान प्रकाश मे झलकने लगी। सिह का हृदय परिवर्तित हो गया। आत्मा की आवाज आत्मा ने सुनी और समझी। सिंह पूँछ हिलाता हुआ योगीराज के चरणो मे नत मस्तक हो गया।

अजितजय मुनिराज ने सिंह को आत्मविभोर देख पुन सम्बोधन किया - मृगराज घबराओ मत, तुम्हारा आत्मा ज्ञानादि अनत शक्तियो का पुज है। तुम्हारा दशवा भव तीर्थंकर महावीर का होगा।

सिंह ने सयम अगीकार कर लिया। सिंह का शरीर कृश होने लगा। खरगोश सूखे तृण ला-ला कर सिंह के सामने रखते है और उन्हे ग्रहण करने का आग्रह करते हैं। मरण समय सन्यास धार तिर्यन्चो की अनेक यातनाओ को समता भावो से सहन करता हुआ प्राण विसर्जन कर सौधर्म स्वर्ग मे सिंह केतु नाम का देव हुआ। सिंहकेतु देव जिन चैत्यालयो की वदना, जिनेन्द्र अर्चना मे समय व्यतीत करने लगा। एक दिन उसे अजितजय मुनिराज के दर्शन हुए, उसने भक्ति से विभोर होकर उनकी वन्दना की। वह प्रार्थना करने लगा, भगवन्-वीतरागता की प्राप्ति का कोई उपाय बताईये। देव गति मे भोगो की बहुलता है। मुझे इन्द्रियो के भोग शिखा तप्त घृत स्नानवत् प्रतीत होते हैं। मुनिराज ने कहा - हे भव्य आत्मन् भोगो की अरुचि और चित् स्वभाव की रुचि वीतराग मार्ग का प्रथम साधन है। सिंहकेतु देव अनासक्त भावो से स्वर्गों के भोग भोगता हुआ आयु पुर्ण कर विद्याधर नरेश हुआ।

कनकोज्ज्वल पर्याय :-

सिंहकेतु देव स्वर्ग की आयु चय कर धात की खण्ड द्वीप के पूर्व विदेह मे राजा कनकपुख की पत्नी कनकमाला से कनकोज्जवल नाम का पुत्र हुआ। शिशु द्वितीया के चन्द्र की भाँति क्रमश वृद्धिगत होने लगा। कनकोज्ज्वल ने अनेक विद्याओ मे अल्प समय मे प्रवीणता प्राप्त कर ली।

एक दिन वह कनकवती पत्नी के साथ जिन चैत्यालयो की पूजा के लिये गया। वहाँ अवधि ज्ञानी मुनीश्वर के दर्शन हुए। वह सभक्ति नमस्कार कर उनके चरणो मे बैठा और कर जोड़ प्रार्थना करने लगा - "भगवन् जन्म-मरण दूर करने का उपाय बताईये।" मुनीराज ने कहा - "हे भव्य! मिथ्यात्व, राग द्वेष रहित, सम्यगदर्शन ज्ञान, चारित्र सहित तेरह प्रकार का चारित्र धारण करने से जन्म-जरा-मृत्यु का विनाश हो जाता है। हे भव्य तुम्हारी भली होनहार है, तुम्हारा ससार निकट आ गया है।" आशीर्वचनो को श्रवण कर कनकोज्ज्वल का मन ससार, शरीर भोगो से विरक्त हो गया। उसने गृहस्थपना त्याग कर मुनि धर्म अगीकार कर लिया। ज्ञान, ध्यान, तप मे लीन रहता हुआ समय व्यतीत करने लगा। आयु के अन्त

मे समाधीमरण कर लातव स्वर्ग मे महा ऋद्धि सम्पन्न देव हुआ। वह देवगति मे विचार करता है - "यहॉ सर्व सामग्रियॉ विलासितापूर्ण है। इस पर्याय मे सयम अगीकार नही किया जा सकता है। अत मै यहाँ भोगो मे अनासक्त रहुँगा।"

हरिषेण पर्याय :-

कनकोज्जवल का जीव स्वर्ग से च्युत हो अयोध्या के राजा वज्रसेन की पत्नी शीलवती से हरिषेण नाम का पुत्र हुआ। हरिषेण ने कुमार अवस्था मे राजनीति, युद्धकलाओ मे निपुणता प्राप्त कर ली। हरिषेण राज्य का सुचारू रूप से सचालन करते थे। प्रति दिन एक अधोवस्त्र और एक ऊर्द्ध वस्त्र पहनकर देव पूजन, मुनि को आहार दान देते थे। मत्रियो को उनका आदेश था कि जिन मदिरो मे मुझे महाराजा मत कहना। देव, शास्त्र और मुनियो के सामने मेरा आदर मत करना।

एक दिन विनश्वर बादलो की नश्वरता को देख जैनेश्वरी दीक्षा अगीकार कर ली। ग्रीष्म मे पर्वत के शिखर पर, वर्षा मे वृक्ष तले, शीत मे सरोवर के किनारे ध्यानारूढ़ रह आत्म साधना करने लगे। वे दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप आराधनाओ का सेवन करते हुए शुद्ध आत्म स्वभाव मे चरण करते थे। आयु के अन्त मे समाधि मरण कर महाशुक्र (दसवे) स्वर्ग मे देव हुए।

प्रिय मित्र चक्रवर्ती पर्याय :-

स्वर्ग से च्युत हो धात की खण्ड के पूर्व विदेह मे राजा सुमित्र की पत्नी से प्रिय मित्र नाम का पुत्र हुआ। वह बडा होकर चक्रवर्ती बना। पूर्व भवो मे की गई साधना सागर के ज्वार की तरह अगडाई लेने लगी। अमृत साधना से रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग मे चलने की भावनाएँ प्रखर होने लगी।

एक दिन चक्रवर्ती, तीर्थंकर क्षेमकर की वदना के लिए गया। समवशरण मे पहुँचकर तीर्थकर की तीन प्रदिक्षणा देने के उपरान्त मनुष्यो के स्थान पर बैठ गया। तीर्थकर की दिव्य ध्वनि से ससार की असारता का निरूपण

हुआ। उसे श्रवण कर जिन दीक्षा अगीकार कर ली। आयु के अन्त मे सहस्त्रार (बारहवे) स्वर्ग मे देव हुआ।

राजा नन्द पर्याय :-

स्वर्ग से च्युत हो छत्रपुर के राजा नदीवर्द्धन की पत्नी वीर मती से नद नाम का पुत्र हुआ। अल्प वय मे सर्व विद्याओ एव कलाओ मे निपुण हो गया। नद राज्य का सुचारु रूप से सचालन करते हुए द्वादश व्रतो का पालन करने लगा। उसके ज्ञान मे त्रिकाली ध्रुव भगवान् आत्मा विषय बनने लगा। चित् स्वभाव की प्रतीति आत्म सुख स्वरूप है। मै एक शुद्ध, दर्शन, ज्ञानमय चैतन्य पुज हूँ। वैराग्य की प्रखरता होने पर नद ने बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ।

नद मुनिराज ने श्रुतकेवली के पादमूल मे बैठकर सोलह कारण भावनाओ द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बध किया। आयु के अत मे समाधि मरण कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान मे बाईस सागर की आयु अच्युतेन्द्र पद मे व्यतीत की। स्वर्ग से च्युत हो, कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ के यहॉ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को जन्म लिया।

इस प्रकार महावीर स्वामी के जीव का अत्मोन्नति के पथ मे अनेक बार उत्थान-पतन हुआ। पुरुरवा भील की पर्याय से प्रारम्भ की गई साधना महावीर की पर्याय मे पूर्णता को प्राप्त हुई।

- o o -

जिय नहान धोना तीर्थ जाना, धर्म नाही जप जपा।
तन नग्न रहना धर्म नाही, धर्म नाही तप तपा
वर धर्म निज आतम स्वभावी, ताही बिन सब निष्फला।
'बुधजन' धरम निज धार लीना, तिनही कीना सब भला

गर्भ कल्याणक के पूर्व

धर्म प्राण वसुन्धरा पर अज्ञानवाद, अनियतवाद, नियतवाद, भौतिकवाद, क्रियावाद, अक्रियावाद, यज्ञवाद आदि विभिन्न विचार धाराओ से मानव समाज मे निराशा उत्पन्न होने लगी। धर्म आराधक विषय-वासनाओ के व्यामोह से मोहित होने लगे। धरा भी अन्याय, अत्याचार से पीड़ित हो आँसू बहाती थी।

इस प्रकार के प्रदूषित आचार विचारो को प्रदूषण से मुक्त करने ऐसे अलौकिक पुरुष की आवश्यकता है जो वीतराग विज्ञानमय श्रमण सस्कृति को अविकल और अक्षुण्ण बनाये रख सके। भव्य जीवो को पूर्वापर अविरूद्ध आत्म हितकर, सब अहित हर धर्म द्वारा कारण परमात्मा से कार्य परमात्मा रूप होने की विधि सिखला सके।

महाराजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला जगत् के सर्व जीवो को अज्ञान अधकार से उबार कर ज्ञान प्रकाश मे लाने वाले युग पुरुष की प्रतीक्षा रत रहते थे। "भावना फलदायिक होती है" फलत देवो द्वारा रत्न वृष्टि से अवनि की गोद मे सुख की मणियाँ जगमगा उठी। सामाजिक जीवन मे पुन धर्म प्रगट होने की आशा जाग्रत हो गई। जन-जन का हृदय धर्म से उल्लसित हो गया, धरा अपने को धन्य मानती हुई हरितिमा से आवृत हो शस्य-श्यामला की अनुपम छटा को विकीर्ण कर पुलकित हो उठी। सुमनो से सुरभित मकरद झरने लगा। नदी, नालो एव जलाशयो मे मधुर जल क्षीर सागर के समान शोभायमान होने लगा। खेतो मे लह-लहाती फसले, खलिहानो मे अनाज के ढेर, नदियो का निनाद एव पक्षियो के कठ से नि सृत ध्वनि सवेग एव वैराग्य की गौरव गाथा का गान सी प्रतीत होने लगी।

महारानी त्रिशला का मुख मण्डल अपूर्व आभावान हो गया। हृदय मे बहु भग-तरगो से उछलती हुई अनुपम ज्ञान गगा प्रवाहित होने लगी। आनद सूचक शुभ शकुन दिखाई देने लगे। महारानी त्रिशला के हर्षोल्लास

की चर्चा स्वर्ग लोक मे फैल गई।

सौधर्म इन्द्र ने त्रिशला की परम पुनीत भावनाओ की अभिवृद्धि हेतु देवागनाओ को उनके राजभवन मे प्रेषित किया। कुबेर को आदेश दिया तीर्थंकर महावीर स्वामी के गर्भ के छ माह पूर्व से कुण्डलपुर नगर को समृद्ध कर दो। प्रतिदिन ३ ५ करोड़ रत्नो की वृष्टि तीन बार करो।

- o - o -

"चेतन निज में आनन्द आये"

मधु लिये किंपाक जगत है, मन को बहुत लुभाये।
मिले खुशी नहिं मिले उदासी, हर पल मोह सताये।।१।।
इच्छा के अनुसार परिणमन, सुख प्रतिभास कराये।
बदली सा सयोग जगत का, पल मे विलय हो जाये।।२।।
अपनाने से लगते अपने, नव अरमान सजाये।
लाख कोशिशे करने पर भी, अपने नहिं बन पाये।।३।।
जिसे भी अपना साथी समझा, वह न साथ चल पाये।
पर की सगति को करने से, अपना पद न सुहाये।।४।।
इन्द्रिय विषय भोगने हेतु, साधन अधिक बढ़ाये।
क्षण भर को भी भोग सके न, आश मे समय बिताये।।५।।
पर द्रव्यो की सगति करके भव का भ्रमण बढ़ाये।
जग का ऐसा ही स्वभाव है, बिन समझे दु ख पाये।।६।।
अपना नहिं सबध किसी से, परिणति ऐसी हो जाये।
पक मे भी पकज सा जीवन, अक्षय सुख उपजाये।।७।।
दर्शन ज्ञान चारित्र एकता, पुन न भव को धराये।
सहज स्वभाव मे रम जाने से, शिव स्वरूप शिव पाये।।८।।
चेतन निज मे आनद आये।।

रमेशचद्र बाझल

सोलह स्वप्न

माता का समय आध्यात्मिक चिन्तन मे व्यतीत होने लगा। रात्रि विश्राम के समय निद्रा उन से भयभीत हो आकाश आलय मे दूर खड़ी रहती है। पलको तक आने का प्रयास भी नही कर पाती। एक रात्रि मे त्रिशला को आत्म चिन्तन मे लीन एव नेत्र निमीलित देख, निद्रा पलको का आश्रय पाने का प्रयास कर रही थी कि उनकी पलको पर सुहावनी स्वप्न पक्ति उतरती दिखाई पडी -

पहला स्वप्न - ऐरावत हाथी :

एक लाख योजन का श्वेत हाथी निर्मल आकाश मे अनुपम अदभुत रस प्रवाहित कर रहा है। लौकिक गजो से सर्वथा भिन्न अलौकिक दिखाई दिया जो स्वप्न मे भी अत्यत मनोज्ञ लग रहा है। दत पक्तियो के उपर तालाब के कमलो के पत्तो पर अप्सराये नृत्य करती हुई अति शोभायमान हो रही है।

दूसरा स्वप्न - श्वेत वृषभ :

उन्नत स्कध वाला श्वेत वृषभ अत्यन्त मनोहारी है। उसके अग-अग से भद्रता झलक रही है। उसका सौन्दर्य श्रगार पूर्ण बसत सा प्रतीत हो रहा है। नेत्र नील मणि वत् है। उसकी मद भरी चाल और धनुषाकार श्रृग समता सहिष्णुता का प्रतीक दिख रहे है।

तीसरा स्वप्न - धवल सिंह क्रीड़ारत :

प्रकृति की अनुपम छटा मे सिह की मधुरिम किलकारियो मे सगीत की सरस स्वर लहरियॉ गगन मण्डल को गुजायमान कर रही है। उसकी मद-मद मुस्कानो से मनाकृष्ट है। उषा काति समान ओष्ठो के भीतर अनार के दाने की भॉति दत पक्ति है, जिस पर करुणा का विशाल सागर लहरा रहा है।

चौथा स्वप्न -
सिंहासन पर स्थित लक्ष्मी को गज स्नान कराते हुए :

सिंहासन पर विराजमान लक्ष्मी का सौन्दर्य चन्द्रकाँत मणियो की भाँति है। अतरीक्ष मे स्वर्णिम कचन काया मणियो से भी अधिक दीप्तवत है। गज सुमेरु से उन्नत, अलकारो से अलकृत, कामदेव की तरह सुन्दर दिखाई दे रहे है। जो अपनी सूड द्वारा जल से लक्ष्मी को स्नान करा रहे है। लक्ष्मी पर गिरने वाली जल धारा विभिन्न मणियो की काति लिए दिखाई दे रही है।

पाँचवा स्वप्न - मंदार पुष्पो की दो मालाऐं :

रत्न कातिमान युगल मालाऐ ऐसी प्रतीत हो रही है - जैसे तोरण की वर मालाऐ। मालाओ मे गुम्फित पुष्प नेत्रो को आकृष्ट किये हुए है।

छठा स्वप्न - नक्षत्रों से परिवेष्ठित पूर्ण चन्द्रमा :

ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो चतुरगी सेना से सुसज्जित इन्द्र हो। चन्द्र किरणे सुधा वृष्टि कर रही है। आकाश स्फटिक मणि के समान निर्मल दिखाई दे रहा है। चन्द्र को वेष्ठित नक्षत्र अनुपम सदन की प्रतीति करा रहा है। चन्द्र प्रकाश अत्यन्त शीतल एव आनदकारी है।

सातवां स्वप्न - उदित होता सूर्य :

उदित सूर्य से सम्पूर्ण लोक आलोकित हो गया। अवनि और अम्बर रत्न प्रभा समान प्रभावान हो रहे है। शीतल प्रकाश सहस्त्र सूर्यो की आभा झलका रहा है। सूर्य रश्मियाँ मोतियो की झालर सदृश्य दृष्टि गोचर है।

आठवां स्वप्न -
कमल पत्रों से ढके जलपूर्ण दो स्वर्ण कलश :

कलशो की अनुपम शोभा मनाकृष्ट किये हुए है। कलश मृग नयन

की भाँति सुन्दर है उनमे भरा जल क्षीरसागर की छटा विकीर्ण कर रहा है।

नववां स्वप्न - सरोवर में क्रीड़ारत युगल मीन :

मीन अपनी मस्ती मे छकी-पकी अठखेलियाँ कर रही है। लहराती बल खाती मदभरी चाल मधुर रसो को टपका रही है। उनके पुच्छ भाग मणिमय कातिमान है। छम-छम सुरीली तान गुजाती हुई नृत्य कर रही है।

दसवां स्वप्न -
हंसों और कमलों से सुशोभित विशाल जलाशय :

वैडूर्यमणि, पद्मरागमणि, नील मणि एव स्फटिक मणि की दीप्ति सी दैदीप्यमान कमल पखुड़ियो की शोभा अनिर्वचनीय है। हसो के समूह अमरो की पक्तियाँ प्रतीत होती है।

ग्यारहवां स्वप्न - तरंगित अथाह सागर :

सागर का गम्भीर नाद सरस सगीत सुना रहा है। सागर की तरगे गगन का चुम्बन ले रही है। तरगो से परावर्तित सूर्य रश्मियाँ अनुपम कातिमान है।

बारहवां स्वप्न - स्वर्ण सिंहासन :

अतरीक्ष मे स्वर्ण सिंहासन पीठ पद्मराग मणियो की दीप्ति सा दैदीप्यमान है। उसके चतु पाद प्राची दिशा मे उषाकालीन अरुणिम आभा से आभावान है।

तेरहंवा स्वप्न - रत्नों से अलंकृत देव विमान :

विमान अपनी रत्नमय दीप्ति से आकाश को विभिन्न रगावलियो से रजित कर रहा है। कहीं नील मणियो, कही पद्मराग मणियो, कही चन्द्रकात

मणियो, कही हीरक मणियो की काति फैलाए, स्वर्ग की अनुपम छटा को विकीर्ण कर रहा है।

चौदहवां स्वप्न -
पृथ्वी से उठता हुआ नागेन्द्र का गगनचुम्बी भवन :

उक्त भवन उदयाचल पर्वत पर उदित दिनकर की भाँति शोभायमान है। भवन सर्व सुविधा युक्त है। भवन का निचला भाग अरुण मणियो सा कातिमान है। ऊर्द्ध भाग रत्नाभ है। भवन के अग्र भाग मे चन्द्रकाँत मणियो की काति जल प्रवाह का भ्रम उत्पन्न करती है। भवन मे कही मोतियो की मालाऐ लटक रही है, कही मरकत मणियो का प्रकाश व्याप्त है, कही वैडूर्य मणियो की नीली आभा छिटकी हुई है, कही हीरक दीप्ति दीप्तवत है।

पन्द्रहवां स्वप्न - रत्नों की राशि :

रत्नो की राशि कुबेर के कोष का रत्नागार सा प्रतीत हो रही है। रत्नो की राशि असख्य सूर्यों का यूथ बना हुआ है। रत्नो की दीप्ति से सम्पूर्ण लोक दैदीप्यमान है।

सोलहवां स्वप्न - धधकती हुई निर्धूम अग्नि :

अग्नि की ज्वालाएँ अरुण मणियो की झालर हैं। ज्वालाओ के ऊर्द्ध भाग से नि सृत किरणे देवागनाओ की मुस्कान प्रतीत होती है। अरूणिमा लिये ज्वालाएँ विभिन्न (बत्तीस) मुद्राओ द्वारा देवियो का अभिनय प्रगट कर रही हैं। जिससे नव रस बरस रहा है।

भविष्य सूचक स्वप्नो को देखते हुए स्वप्न मे ही त्रिशला के हृदय मे अपूर्व आनद का सागर उमड़ पड़ा।

स्वप्नोपरान्त त्रिशला विचार करती है - स्वप्न आने का अतरग कारण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वीर्यान्तराय का क्षयोपशम तथा मोहनीय का उदय निमित्त है। कर्मों के उदय एव क्षयोपशम के अनुसार जीवन मे कार्य देखा

जाता है। इसलिये इन स्वप्नो का सम्बन्ध हमारे जीवन से है। स्वप्नो के सम्बन्ध मे ज्यो-ज्यो विचार आता है, त्यो-त्यो उनका विस्तृत फल जानने की उत्सुकता बढ़ती जाती है। मैने आज तक कभी इस प्रकार की जागृत अवस्था मे कल्पना भी नही की जो आज स्वप्न देखे है। इस प्रकार विचार कर, देखे गये स्वप्नो का फल जानने के लिए अपने पति महाराजा सिद्धार्थ के पास प्रात जाने का निश्चय किया।

नित्य कृति कर्म से निवृत हो, राजकीय वस्त्राभूषणो से विभूषित होकर हर्षोल्लास के साथ राजभवन की ओर प्रस्थान किया।

राज्य सभा मे पहुँचने पर त्रिशला ने पति को प्रणाम किया। महाराज ने यथोचित ससम्मान अपने पास बैठाया। सभी सभासदो ने खड़े होकर जय-जयकार ध्वनि से महारानी का अभिनदन किया। महाराज सिद्धार्थ ने पूछा - प्रिय देवी आज राज्य सभा मे आने का कष्ट क्यो किया? महारानी मधुर कठ से बतलाने लगी - हे स्वामिन् आज रात्रि के पिछले प्रहर मे मैने सोलह स्वप्नो की सुहावनी पक्ति देखी है। स्वप्न शास्त्रानुसार ये शुभ सूचक प्रतीत होते है। मै उन स्वप्नो का फल विस्तृत जानने की इच्छा से आपके पास आई हूँ। कृपा कर मेरे स्वप्नो का फल विस्तार से बताइए। मैने ये १६ स्वप्न देखे है -

पहला स्वप्न	-	ऐरावत हाथी
दूसरा स्वप्न	-	श्वेत वृषभ
तीसरा स्वप्न	-	धवल सिह क्रीडारत
चौथा स्वप्न		सिहासन पर स्थित लक्ष्मी को गज स्नान कराते हुए
पॉचवॉ स्वप्न	-	मन्दार पुष्पो की दो मालाऍ
छठा स्वप्न	-	नक्षत्रो से परिवेष्ठित पूर्ण चन्द्रमा
सातवा **स्वप्न**	-	उदित होता सूर्य
आठवा स्वप्न	-	कमल पत्रो से ढके हुए दो स्वर्ण कलश
नववा स्वप्न	-	सरोवर मे क्रीड़ारत युगल मीन
दसवा स्वप्न	-	हसो और कमलो से सुशोभित विशाल जलाशय

ग्यारहवा स्वप्न - तरगित अथाह सागर
बारहवा स्वप्न - स्वर्ण सिहासन
तेरहवा स्वप्न - रत्नो से अलकृत देव विमान
चौदहवा स्वप्न - पृथ्वी से उठता हुआ नागेन्द्र का गगनचुबी भवन
पन्द्रहवा स्वप्न - रत्नो की राशी
सोलहवा स्वप्न - धधकती हुई निर्धूम अग्नि

- ० - ० -

स्वप्नों का फल

महाराजा सिद्धार्थ स्वप्नो को श्रवणकर उनका फल स्वप्न शास्त्रानुसार बताने लगे - तुम बड़ी भाग्यशाली हो, तुम्हारे गर्भ से एक महान् विभूति का जन्म होगा। वह राग-द्वेष कर्म कालिमा को दूर कर परिनिर्वाण पद प्राप्त करेगा। भव्य जीवो मे आध्यात्मिक सस्कृति को जागृत कर चित् स्वभाव चितन की अनेकात मयी वीणा वादन करेगा। परतत्रता और परावलम्बन को मिटाकर स्वतत्रता और स्वावलबन का मार्ग प्रशस्त करेगा। विश्व बधुत्व की भावना का उद्घोषक, मोक्ष मार्ग का नेता, कर्म पर्वतो का भेदक, विश्व तत्वो का ज्ञाता, शतेन्द्र पूज्य होगा। उसके नाम का शासन प्रर्वतेगा उसके साथ अनेक आत्माएँ रत्नत्रय की एकता प्रगट कर परम पद प्रगट करेगी।

पहिले स्वप्न का फल -

स्वप्न शास्त्र मे ऐरावत हाथी महत्ता का प्रतीक है। बालक तीर्थनायक पतित पावन, विश्व उद्धारक, अनेकात स्थापक, परम अहिंसा धर्म का उपासक, करुणा सागर, सवेग एव ज्ञान वैराग्य सम्पन्न होगा।

दूसरे स्वप्न का फल -

स्वप्न मे उन्नत श्वेत वृषभ का देखना धीर, पवित्र आचरण सम्पन्न, वीतरागी, अभय, सहिष्णुता का प्रतीक है। वह ज्ञानाध को दूर कर जगत्

को अध्यात्म के आलोक से आलोकित करेगा।

तीसरे स्वप्न का फल -

सिंह क्रीड़ा करते देखना, बल, प्रताप, पौरुष का प्रतीक है। वह शत्रुता नाशक अतुल पराक्रमी, आत्म दृष्टा, स्वतत्रता और स्वावलम्बन से परमात्म पद प्राप्ति का निर्देशक होगा।

चौथे स्वप्न का फल -

सिहासन स्थित लक्ष्मी का गजो द्वारा स्नान शतेन्द्र पूज्यता का प्रतीक है। जन्म के समय सौधर्म इन्द्र अपने परिकर सहित शिशु का सुमेरु पर जन्माभिषेक सम्पन्न करेगा। वह बड़ा होकर बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी का स्वामी एव वस्तु स्वरूप प्रतिपादक होगा।

पाँचवे स्वप्न का फल -

मदार पुष्पो की मालाएँ यश एव अतीन्द्रिय आत्म सुख की सूचक है। उसका शरीर सुगधित, कातिमान और अनेक शुभ लक्षणो से सयुक्त होगा। हृदय कोमल एव वासना मुक्त होगा।

छठे स्वप्न का फल -

नक्षत्रो से वेष्ठित चन्द्र अमृत वर्षा का प्रतीक है। उसके सर्वांग से दिव्य ध्वनि खिरेगी। जिससे भव्य जीव कर्म कालिमा मिटाकर अतीन्द्रिय आनद प्रगट करेगे। उसके वचन भव रोगियो को औषधि, ससार तपितो को जल होगा।

सातवें स्वप्न का फल -

उदित सूर्य दिव्य ज्ञान प्राप्ति का प्रतीक है। जन्म से मति, श्रुत, अवधि ज्ञान का धारी होगा। उसकी दिव्य ज्ञान ज्योति से सरागता की समाप्ति

और वीतरागता का प्रकाश होगा।

आठवें स्वप्न का फल -

कमल पत्रो से ढके जलपूर्ण कलश करुणा का प्रतीक है। वह जगत् के जीवो को भव से पीड़ित देख करुणा से द्रवीभूत हो भवोद्धारक अहिंसा धर्म का प्रबल प्रचारक होगा। सर्व निधियो का स्वामी ध्यानरत लोक मगलकारी होगा।

नववें स्वप्न का फल -

युगल मीन - अनत सौख्य सूचक है। वह अध्यात्म मय जीवन जीता हुआ स्वरूप सावधानी के बल से अभीष्ट सिद्धियो को प्राप्त करेगा।

दसवें स्वप्न का फल -

' हसो और कमलो से सुशोभित विशाल जलाशय - स्वसम्वेदनशीलता का प्रतीक है। वह स्वसवेदक, चित् स्वभाव का अध्येता, समदर्शी, अलिप्त, शाति सदेशक, स्वानुभूति मग्न होगा।

ग्यारहवें स्वप्न का फल -

अथाह सागर हृदय की विशालता का प्रतीक है। उसके हृदय की विशालता अहिंसात्मक विधि से जीवो को यथार्थ सुख का उपाय बतायेगी। मानव भव सफल करने को प्रेरणास्पद एव सर्व नयो के विलासरूप अनेकात का प्रसारक होगा।

बारहवें स्वप्न का फल -

मणि जड़ित सिहासन वर्चस्व और प्रभुत्व का सूचक है। आभ्यन्तर सम्पदा का स्वामी अनत चतुष्टय धारी होगा। उसके जीवन से चित् शक्तियो का स्फुरण होगा।

तेरहवें स्वप्न का फल -

देव विमान कीर्ति का प्रतीक है। स्वर्ग से च्युत हो गर्भ मे आयेगा लोक मे सर्वत्र कीर्ति फैलेगी। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग का नेता होगा।

चौदहवें स्वप्न का फल -

नागेन्द्र का भवन अवधिज्ञान का प्रतीक है। वह जन्म से ही अवधि ज्ञानी होगा। उसकी आत्म ज्योति से सम्पूर्ण लोक जगमगायेगा और लोग आश्चर्यचकित होगे। समस्त जगत् मे मैत्रीभाव बर्तेगा। वह लौकिक सम्पदाओ मे रजायमान न होकर अलौकिक आत्म सम्पदा मे अनुरजित रहेगा। आत्म शुद्धि की दिशा मे अबाध बढ़ता हुआ पूर्णता को प्राप्त करेगा। धर्मान्धता का लोप कर शुद्धात्म धर्म का सस्थापक होगा।

पन्द्रहवें स्वप्न का फल -

रत्नो की राशि अनत गुणो की प्राप्ति का प्रतीक है। रत्नत्रय की एकता की पूर्णता रूप मोक्ष मार्ग है, उसे जन-जन को सिखायेगा। स्वय मोक्षमार्गी बन जगत् को मोक्ष मार्ग का प्रकाश करेगा।

सोलहवें स्वप्न का फल -

निर्धूम अग्नि सकल कर्मो के क्षय का प्रतीक है। वह स्वरूपाचरण चारित्र के साथ ध्यान अग्नि से अष्ट कर्मो को नष्ट कर सिद्ध पद प्राप्त करेगा। अपने ज्ञान प्रताप से सर्व जीवो को अपने-अपने ज्ञान की प्रचण्डता को बतायेगा।

इस प्रकार स्वप्न शास्त्र के ज्ञाता महाराज सिद्धार्थ से स्वप्नो का फल श्रवण कर, त्रिशला का हृदय आनद विभोर हो गया। वह अपने भाग्य की सराहना करती हुई अपना जीवन सफल समझने लगी। वह उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगी जिस घड़ी मे उस दिव्य ज्योति पुन्ज का जन्म होना है।

गर्भ कल्याणक

५४९ ई पू १७ जून शुक्रवार आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को अच्युत स्वर्ग से च्युत हो महावीर का जीव त्रिशला के गर्भ मे आया। उस समय से उनका मुख मण्डल अनुपम कातिमान हो गया। अग प्रत्यग शुभ सूचक फड़कने लगे।

महाराजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला के भाग्य की महिमा वचनातीत है। उनका घर आगन, देव-देवागनाओ का क्रीड़ा स्थल बन गया। सम्पूर्ण वैशाली धन-धान्य से अभिवृद्ध हो रही है। नगरवासी हर्षोल्लास के सरोवर मे निमग्न है। वसुन्धरा हरित वस्त्र पहन फूलो-फलो से अलकृत हो तीर्थ नायक की आगवानी करने को तैयार हो गई है।

महाराजा सिद्धार्थ त्रिशला के मनोरथो को पूर्ण करने मे सचेष्ट हैं। उन्होने उनकी सेवार्थ अप्रमत्त परिचारिकाएँ नियुक्त की। जो माता के स्वाभावानुकूल कार्य करती है। स्वर्ग की देवागनाएँ माता की सुख-सुविधा को अबाधित रखती है और अपने भाग्य की सराहना करती है। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, शाति, पुष्टि ये अष्ट कुमारियाँ भी सेवा मे सलग्न है। इस प्रकार सम्पूर्ण वातावरण सेवामयी है।

देवियॉ सगीत, नृत्य, चित्र, काव्य गोष्ठी आदि द्वारा माता का मनोविनोद करती है। उनके आमोद-प्रमोद मे ही सस्कृति, नैतिक विश्वास, वैराग्य एव निष्ठात्मक चेष्टाओ की अभिव्यक्ति होती है। चर्चा-वार्ता मे जीवन की सारता एव असारता जैसे गम्भीर रहस्यो का दोहन हुआ करता है। उनकी पवित्र भावनाओ एव सस्कारो से प्रजा जन विशुद्ध आचारवत हो रहे हैं। वैशाली की धरा भी अपने को कृत-कृत्य मान रही है। रत्नो से दैदीप्यमान पृथ्वी पर प्रकृति ने अनुपम मधुरिमा घोल दी है। प्राकृतिक सौन्दर्य मे कामदेव अवतरित हुआ है। सभी ऋतुओ के पुष्प-फल पल्लवित हो रहे है। दर्पण सी चमकती हुई पृथ्वी उषाकालीन दिव्य सौन्दर्य सी पुलकान भर रही है।

- ० - ० -

जन्म कल्याणक

तीर्थंकर शिशु (महावीर) का जन्म होते ही तीन लोको मे अपूर्व आनन्द छा गया। सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। भवनवासी आदि देवो के यहाँ घटा की अनहद ध्वनि हुई। अमरो ने अवधि-ज्ञान से जान लिया कि वैशाली मे तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ है। वे हर्ष से झूम उठे। देव दुदुभियो से सम्पूर्ण आकाश गुजायमान हो गया। देव गण अतरिक्ष मे दिव्य वाद्यो मे तुमलनाद् के मध्य जय-जयकार के साथ पुष्प वृष्टि करने लगे।

तीर्थंकर शिशु महावीर का शरीर अतिशय रूपवान, सुगधित, पसेव एव निहार रहित, श्वेत रुधिर, अतुल बल, सम चतुष्क सस्थान, वज्र-वृषभ-नाराच-सहनन आदि एक हजार आठ लक्षणो से सयुक्त है।

वैशाली का नद्यावृत प्रासाद दिव्य मणियो की कान्ति से जगमगा रहा है। सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर आरूढ हो अपने विशाल परिवार सहित भक्ति विभोर हो उमड़ता हुआ राज भवन की ओर चला आ रहा है। ऐरावत हाथी आभियोग्य जाति का देव है, जो एक लाख योजन का उन्नत है। इसके सौ मुख हैं। प्रत्येक मुख मे आठ दात हैं। प्रत्येक दत पर एक सरोवर है। प्रत्येक सरोवर पर एक सौ पच्चीस कमलिनी हैं। प्रत्येक कमलिनी पर पच्चीस कमल हैं। प्रत्येक कमल पर एक सौ आठ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र पर एक-एक अप्सरा नृत्य कर रही है। गजराज आनन्द से किलकारी भरता हुआ माता के प्रकोष्ठ पर उतर नगर की तीन प्रदिक्षणा देता है। शचि वातायन पथ से कक्ष मे प्रविष्ट होती है। दिव्य ज्योति पुन्ज शिशु को अक मे लेते ही उसके अग-प्रत्यग अपूर्व पुलकित हो जाते हैं। इन्द्र शिशु को अपनी बाहो मे ले आनन्द सागर मे निमज्जित हो जाता है। सहस्त्र चक्षु से उसमे तीर्थंकरत्व के अवलोकन से वह तृप्त नही होता। वह ज्यो-ज्यो निहारता त्यो-त्यो अनन्त गुणो की महिमा वृद्धिगत हो जाती है।

जन्म कल्याणक सम्पन्न करने सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर आरूढ हो शिशु महावीर को अपनी गोद मे विराजमान कर आनन्द से झूमता हुआ सुरगिरि की और प्रस्थान करता है। गगन मण्डल मे देवो की भव्य शोभा यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। आकाश विपुल वाद्यो एव मगल गीतो से प्रति ध्वनित हो जाता है। ईशान इन्द्र प्रभु के सिर पर छत्र ताने, सनत कुमार,

महेन्द्र चमर ढोरते हुए अपनी पर्याय को धन्य समझते हैं।

रम्यक पाडुक वन मे इन्द्र आदिको के रथ स्थिर हो जाते हैं। इन्द्र-इन्द्राणियाँ भक्ति से विवश हो अन्तरिक्ष मे नाना कलाओ एव विभिन्न तालो के अनुसार नृत्य करते हैं। उनके मुखो से अनेक राग-रागनियाँ मुखरित हो जाती हैं। ऐरावत पाण्डुक वन की तीन प्रदिक्षणा देता है। फिर सौधर्म इन्द्र ईशान दिशा मे तीर्थंकर महावीर को पाण्डुक वन के शिखरस्थ अर्द्धचन्द्राकार शिला पर अवस्थित रत्न जड़ित सिंहासन पर विराजमान करता है। देवगण एक हजार आठ कलशो मे क्षीर सागर का निर्मल/पवित्र जल भरकर हाथो-हाथ लाते हैं। सर्वप्रथम सौधर्म इन्द्र बड़े रत्नमय स्वर्णाभ कलश से जन्मभिषेक करता है। जय-जयकार के साथ क्रमश इन्द्रादिको ने जन्माभिषेक किया। इन्द्राणियाँ यह सब दृश्य देख शिशु महावीर के अपरिमित बल की प्रशसा करती हैं। सौधर्म इन्द्र चिदेश महावीर का जन्म कल्याणक सम्पादन कर ताण्डव नृत्य करता है।

नृत्योपरान्त इन्द्र शिशु महावीर के सम्मुख जिनत्व की स्तुति करता है। आप की आत्मा सहज पवित्र है। आपका देह दिव्य परमाणुओ से निर्मित है। हम अपने परिणाम विशुद्धि हेतु आपका अभिषेक करते है। अभिषेक का जल शिला तक आने से पूर्व ही आकाश मे विलय हो जाता है।

प्रभु के अगो पर स्थित जल बिन्दुओ को इन्द्राणी ज्यो-ज्यो मार्जित करती है त्यो-त्यो जल बिन्दुओ की सख्या बढ़ती जाती है। इन्द्राणी असमजस मे पड़ जाती है। कुछ क्षणो के उपरान्त वह समझ जाती है, ये जल बिन्दु नही है, दर्पण से स्वच्छ स्वर्णाभ कपोलो पर मेरे ही आभूषणो का प्रतिबिम्ब है। मार्जनोपरान्त वस्त्राभूषण पहना कर शिशु महावीर को श्रृगारित किया। वैशाली के राज मार्गो से लौटकर इन्द्राणी ने पूर्ववत् प्रसूति गृह मे जा माँ त्रिशला को शिशु सौप दिया और माता की स्तुति करने लगी -

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्यासुत त्वदुपम जननी प्रसूता
सर्वा दिशो दधति भानु सहस्त्ररश्मि
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदशुजालम् ।। २२ ।। भ

इस जगतीतल पर अनेक स्त्रियाँ हैं, जो सैकड़ो पुत्रो को जन्म दिया करती हैं। किन्तु इस लोक मे तीर्थंकर बनने वाले पुत्र को जन्म देने वाली माता आप ही हैं। तारो को चमकाने वाली तो सर्व दिशाएँ हैं किन्तु सूर्य को उदित करने वाली एक प्राची दिशा ही है। माता आप धन्य हैं। आपने महान पुण्यवान, परम तेजस्वी, विश्व कल्याण कारक पुत्र को जन्म दिया है। जगत् मे आप के समान गुणातिशय युक्त महिमाशाली अन्य कोई भी माता नही है। आप का यश तीन लोको मे फैलेगा। तीर्थकर बनने वाले पुत्र को प्रसवने वाली माता देवो और मनुष्यो मे प्रधान है और जगत् जननियो मे तिलक भूत है, सर्व सद्गुणो का पुञ्ज स्वरूप हैं। आप अमल शील, सयम, यम, नियम, पूजा स्वाध्याय, तप आदि गुणो से विभूषित है। आप की विनय सम्पन्नता, सहिष्णुता, एव विवेक अवनि और अम्बर को भूषित कर रहा है, ससार और शरीर सम्बधी भोगो से आपकी उदासीनता अनुपम है। पवित्र तत्व ज्ञान, वैराग्य, उपशमभाव आदि पवित्र आचरणो से आप पवित्र हैं। आप का पुत्र समस्त उदात्त गुणो से सम्पन्न है, अनत चतुष्टय को प्रगट कर तीर्थंकर पद प्राप्त करेगा। स्वय मुक्ति प्राप्त कर अन्य मुमुक्षुओ के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा। आपने अनेक गुणो से परिपूर्ण श्रेष्ठ पुरुषो मे भी श्रेष्ठ, लोकोद्धारक, तदभव मोक्षगामी विभूति को जन्म देकर अपना जन्म सफल किया है। जगत् तुम्हारी प्रशसा करेगा। हम सभी अमर वृद नत मस्तक हो आपका अभिवादन करते है।

इन्द्र ने महाराजा सिद्धार्थ को रत्न जड़ित आभूषण आदि भेटकर बहुत सम्मानित किया। अत मे आनद उत्सव कर इन्द्र एव सभी देव-देवागनाओ ने अपने स्थान को प्रस्थान किया। वैशाली मे प्रजाजनो ने भाति-भाति के महोत्सव मनाये। उनमे सभी देशो के राजा-महाराजाओ ने सम्मिलित होकर अपने को गौरवान्वित अनुभव किया। देश-विदेशो मे प्रभु का जन्म महोत्सव अत्यन्त हर्षोल्लास से मनाया गया।

दिन-प्रतिदिन देश एव प्रजा मे सुख समृद्धि होने लगी। राज्य मे धन-धान्य एव राज्य ऐश्वर्य चक्रवृद्धि गणितानुसार वृद्धिगत हुआ। नगर की ललनाऐ, महिलाऐ प्रभु जन्म की बधाई देने राजभवन की ओर उमड पड़ी। वैशाली अद्वितीय, अनुपम आनन्द के वातावरण मे परिव्याप्त हो उठी।

तीर्थंकर महावीर की जीवन धारा

वर्द्धमान की आध्यात्मिक एव भौतिक विभूति द्वितीया के चन्द्र की भाँति वृद्धिगत है। उनकी बाल क्रीड़ाएँ अनुपम मनोहारी हैं। कामदेव से उत्कृष्ट यौवन होने पर भी यौवन की परिधि से पार हैं। उनमे गम्भीरता, विवेकशीलता, स्वरूप स्थिरता, परिणामो मे पवित्रता आदि अनेक सद्‌गुण क्रीड़ा कर रहे है। जन्म से ही उनमे विशिष्ट विचक्षण प्रतिभा है। उनका जीवन जगत् कल्याण का प्रतीक बना हुआ है।

बालक वर्द्धमान एकात मे बैठ कर विचार करते है जीवन एक कौतुक पूर्ण पहेली है। सासारिक एव शारीरिक दु खो का मूल चित् स्वभाव का अश्रद्धान, अज्ञान और असयम है। ज्ञान बिहीन क्रियाएँ आत्म कल्याण मे बाधक हैं। पर द्रव्यो के प्रति अहकार, ममकार, कर्तृत्व, भोगर्तृत्व भाव दु ख स्वरूप है।

जन-जन के जीवन मे पनप रही सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक विकृतियाँ दूर हो। समता, सहिष्णुता, अभयता, अहिसा, अनासक्ति, विरक्ति आदि अनेक सद्‌गुण प्रगट हो। प्रत्येक मनुष्य वीतराग विज्ञान के आलोक मे चित् स्वभाव के दर्शक एव ज्ञायक बने। प्रत्येक प्राणी अज्ञान एव विषय-कषायो के शिकजे से मुक्त हो और स्वरूपाचरण चारित्र की अभिवृद्धि कर अक्षय अब्याबाध सुख प्रगट करे।

वर्द्धमान विचार करते हैं कि, जगत् मे सुखी जीवन जीने के लिए स्वतत्रता और स्वावलम्बनमयी आध्यात्मिक तत्र की स्थापना अत्यावश्यक है। परतत्रता और परावलम्बन की गुलामी का निरोध कर मुक्ति का शोध करना श्रेयस्कर है।

ससार सयोग लक्षण वाला है, सासारिक महत्ता अधकार है। विषय-भोग विष है, भोगो का भाव पतनकर, पथ भ्रामक, वेदनाकारक और अत मे मृत्यु कारक है। तथा ज्ञान-वैराग्य आलोक है, पथदर्शक, सुखकार है।

उसका आश्रय कर मोक्ष का पथिक बनना चाहिए।

ससार बधनो से मुक्त होने का उपाय बधनो का उच्छेद करना है। आत्मा स्वभाव दृष्टि से अबध स्वरूप ही है। आत्मा को आत्मा से आत्मा द्वारा आत्मा मे आत्मा ही ग्रहण करने योग्य है।

मनुष्यो का जीवन प्रत्येक क्षेत्र मे अहिंसा पोषक, विराग उद्घोषक, ससार शोषक होना चाहिये। आत्माएँ निज पुरुषार्थ के बल से नित्य निरजन निर्विकार विज्ञान घन चित् स्वभाव मे अनुरजित रहे। आत्माओ मे तत्वज्ञान पूर्वक उदासीन परिणाम हो, और प्रखर वैराग्य के बल से मुनि धर्म अगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घातिया का क्षय कर अनत चतुष्टय को प्रगट करे।

मुझे अभी पुण्य का फल देने को जो वैभव मिला है, उससे कई गुना अधिक मैं पूर्व भवो मे भोग चुका हूँ। स्वर्गो मे असख्य देवागनाओ के साथ क्रीड़ा की है। क्षुधित होने पर कठ से अमृत झर गया, फिर भी तृप्ति नही हुई। इन्द्रिय जनित विषय-भोग आकुलता उत्पादक एव दु ख स्वरूप हैं। मनुष्य एव सुकुल तत्वज्ञान की उपलब्धि आत्म कल्याण के लिये मिली है।

इस प्रकार चिन्तन के आलोक से आत्मा विशिष्ट आलोकित होने लगा। उन्हे स्वय का अतीत और वर्तमान प्रदर्शनी रूप परिलक्षित हो उठा। वे इस निश्चय पर पहुँच जाते हैं कि जीव को परतत्रता और परावलम्बन से ससार और स्वतत्रता एव स्वावलम्बन से मोक्ष होता है।

आत्मा का स्वभाव परभावो से भिन्न आदि अत रहित, परिपूर्ण, सकल्प विकल्पो से मुक्त है।[१] मैं एक, शुद्ध, दर्शन, ज्ञानमय, अलिंग ग्रहण, सदा अरूपी हूँ पर द्रव्य एव पर भाव परमाणु मात्र मेरा नही है।[२] जो परमात्मा है वही मै हूँ, जो स्वानुभव गम्य मैं हूँ वही परमात्मा है। इसलिये मे ही मेरे द्वारा उपासना किये जाने योग्य हूँ।[३]

---

१ स सा क १०   २ स सा ग ४९   ३ स श मू ३१

आत्मा में ज्ञान वैराग्य समुल्लसित हो उठा। स्वानुभूति क्रीड़ा करने लगी। हृदय मे अनुपम अपूर्व नाद होने लगा - हे भगवान् आत्मा, कारण समयसार! उठो, प्रमाद से समय मत गवाओ, पर द्रव्यो के साथ मत रहो, मोह निद्रा छोड़ो। जो जागृत रहता है वह अभीष्ट सिद्धियो को प्राप्त करता है, और जो सुप्त रहता है वह उपलब्ध को भी खोता है। उठो! चलो! नित्य निरजन निर्विकार विज्ञान घन चिदानद चैतन्य पुन्ज शुद्धात्मा के पास।

माता-पिता के तीर्थंकर महावीर के प्रति विचार

जब बालक वर्द्धमान युवा अवस्था को प्राप्त हुए, तब माता-पिता को उनका विवाह करने का विकल्प उठने लगा। उनसे विवाह करने का प्रस्ताव किस प्रकार रखा जावे? उनकी प्रकृति आध्यात्मिक है, उनके आचार-विचारो से प्रतीत होता है कि वे विवाह नही करेगे। फिर भी उन्हे गृहस्थ मे नियोजित होने को कहे। उनका नियोजित होना न होना स्वतत्र बात है। महापुरूषो की वृत्यानुसार सहज प्रवृति होती है। अवसर पाकर महाराजा सिद्धार्थ ने कुमार महावीर से गृहस्थ धर्म के प्रशसात्मक वचन कहे। विवाह प्रस्ताव आने से पूर्व महावीर बोले - गृहस्थ धर्म का फल सासारिक एव शारीरिक सुख है। बिना वचन बोले उनके अगो-प्रत्यागो से वीतराग ज्ञान वैराग्य निर्झर रहा था। वे बोले मैं मुनि धर्म अगीकार कर निर्वांच्छक भाव से आत्म साधना करूँगा।

महाराज सिद्धार्थ विचार करने लगे - उनकी यह वृत्ति और प्रवृत्ति उनके योग्य है। सच है - महापुरूषो के मन की थाह को जानन के लिए उन जैसा विशाल मन चाहिए। उन्हे गृहस्थ मार्ग मे नियोजित होने का राग न होने से तदनुसार उन्होने उत्तर दिया।

महाराजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला महावीर की आध्यात्मिकता और ससार शरीर भोगो के प्रति विरक्ति की पराकाष्ठा को देख चकित हो गये। प्रभु के विचारो से उनके हृदय मे क्षत्रियत्त्व भाव जागृत हो जाता है।

माता-पिता विचार करने लगते हैं कि अब हमारे भाग्य का उदय हुआ

है, हमारा जन्म सफल हो गया है। मेरा लाल जगत् के जीवो के लिए वीतराग विज्ञान का भास्कर बनकर उदित हुआ है। उसके ज्ञानालोक से जन-जन का हृदय आलोकित होगा। अज्ञान तिमिर रोग से अधदृष्टियो की ज्ञानाजन शलाका द्वारा चक्षु उन्मीलित करेगा। सुखी होने के लिए अकषाय मय जीवन जीने की कला सिखायेगा। विषयो से मुक्ति का उपाय बतायेगा। इन्द्रिय विषयो मे सुख की भ्राति निवार कर अतीन्द्रिय आनद प्रगट करने की विधि बतायेगा। वह स्वय मोक्ष मार्ग का नेता, कर्म पर्वतो का भेदक एव विश्व तत्वो का पूर्ण ज्ञाता बनेगा।

महाव्रत अगीकार कर रत्नत्रय की एकता की पूर्णता करता हुआ निज स्वभाव साधन द्वारा चार घातिया कर्मो का क्षय कर अरहत पद प्राप्त करेगा। उसके तीर्थंकर प्रकृति के उदय से समवशरण की विभूति आश्रय पाकर शोभायमान होगी। दिव्य ध्वनि खिरेगी। उसके चार दिशाओ मे सौ योजन तक सुभिक्ष रहेगा। चतुर्मुखी, पूर्ण अहिसक, अनशन स्वभावी, आकाशगामी, सर्व विद्याओ का स्वामी, छाया रहित होगा, उसके नख और केश भी नही बढ़ेगे।

सभी ऋतुओ के फल-फूल सख्यात योजनो तक एक साथ पल्लवित होगे। भूमि निष्कटक, दर्पणवत् आभायुक्त दिखाई देगी। गगन मे सुगधित बयार बहेगी। परस्पर मैत्री भाव रहेगा। सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघ कुमार देव गधोदक/जल की वृष्टि करेगे। उस समय सभी जीवो को अपार आनद होगा। नदी, नाले एव जलाशय स्वच्छ जल से पूर्ण भर जायेगे। आकाश अति निर्मल होगा। प्रभु के आगे-आगे धर्म चक्र चलेगा, धर्म के प्रभाव से सभी जीव निरोग रहेगे। प्रभु के चरणो के नीचे स्वर्ण कमलो की रचना होगी। पाद पीठ और विविध प्रकार के दिव्य पूजन द्रव्य होगे। देव विक्रिया से शस्य शालि आदि के वृक्ष फलो से नम्रीभूत रचना करेगे। अशोक वृक्ष के नीचे रत्न जड़ित सिहासन के ऊपर तीन छत्र, पीठ के पृष्ठ भाग मे प्रभा मण्डल, देव दुदुभी बजाते हुए पुष्प वृष्टि करेगे। प्रभु के दोनो ओर चौसठ चमर ढोरेगे। भक्ति सयुक्त गणो द्वारा वेष्टित रहेगे। अनत चतुष्टय सम्पन्न हो कर सौ इन्द्रो से पूज्य बनेगा।

- o - o - o -

द्वादश अनुपेक्षाओं का अनुचिन्तन

अनित्य :

जगत् मे सभी पदार्थ अनित्य रूप से परिणमन करते हैं। अनित्य स्वभावी सकल पदार्थों को नित्य रखने मे कोई समर्थ नही है। इन्द्रिय सुख इन्द्र धनुष के समान, शरीर का लावण्य, यौवन और बल पुष्पवत्, आयु नदी के प्रवाह की भाँति, कुटुम्ब परिवार शरद कालीन मेघो के सादृश्य, जगत् का समागम वृक्ष की छाया, राज्य का वैभव एव भोग जल के बुदबुदो की तरह अनित्य है।

आत्मा स्वभाव से नर नारकादि पर्यायो से भिन्न ज्ञान स्वभावी है। आत्मा के ज्ञान आदि गुण परिणामनशील होते हुए भी उत्पाद-व्यय से रहित नित्य है। शरीर आदि उत्पाद-व्यय सहित है।[1]

अशरण :

असार ससार मे भ्रमण करते हुए जीवो को कोई शरणभूत नही है। आयु पूर्ण होने पर इन्द्रादिक एक क्षण मे मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जीवन के आरम्भ से लेकर जीवनान्त तक मणि, मत्र, तत्र, औषध, धन, वैभव, गज, तुरग, माता-पिता, भाई-बधु, देवी-देवता, इन्द्र-अहमिन्द्र, जिनेन्द्र कोई भी शरणभूत नही है।

भगवान् आत्मा स्वय परिपूर्ण है। उसे शरण की आवश्यकता नही है। जन्म-मरण आदि कष्टो से आत्मा स्वय निज सहज स्वभाव के बल से अपनी रक्षा करता है। रत्नत्रय, दश लक्षण धर्म और सिद्धो की आराधना उपचार से शरणाभूत है। अन्य के शरण मे जाने की कल्पना व्यर्थ है?[2]

संसार :

ससार मे अनादि से जीव स्व-स्वभाव से पराङ्गमुख हो, कर्म निमित्तक स्वाग धारण कर भटक रहा है। अनुकूल एव प्रतिकूल सयोगी भावो से एकत्व, ममत्व करता हुआ ससार बढ़ाता रहा। कर्म विपाक से आत्मा के

१ रा वा स सि ९/७ २ का अ मू ३० भ आ मू १७४६

भवान्तर की प्राप्ति को ससार कहते है। जन्म-मरण के प्रवाह मे एक जीव दूसरे जीव के साथ अनेक सम्बन्धो को स्थापित करता है। माता-पुत्री हो जाती है, पुत्री-माता हो जाती है, पति-पुत्र हो जाता है। इसलिये ऐसे ससार स्वभाव एव उसमे रहने को धिक्कार है। जिस ससार मे इन्द्रादिक भी अनुपम भोगो को भोगकर असह्य दु खो को भोगते हैं।[1]

आत्मा की चार अवस्थाएँ हैं। ससार, अससार, नो ससार और ससारातीत नर-नारक आदि पर्यायो मे भ्रमण ससार। शिव पद के परमामृत सुख मे प्रतिष्ठा अससार। सयोग केवली अवस्था नो ससार। अयोग केवली और सिद्ध ससारातीत हैं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के भेद से ससार पाँच प्रकार है। अनादि-अनत, अनादि शात और सादि शात की अपेक्षा तीन प्रकार का है।

निष्कर्म स्वभावी आत्मा ससार परिभ्रमण से असम्बधित है। अपने त्रैकालिक चित् स्वभाव का सवेदन ससारातीत सुखो का अनुभव है। जो मोक्ष स्वरूप है।

एकत्व :

जगत् मे जीव अकेला अपने परिणामो द्वारा उपार्जित शुभाशुभ कर्मो का फल भोगता है। जन्म-मरण आवृत्ति रूप महा दु खो को अकेला सहता है। जीव का न कोई साथी, न कोई मित्र, न कोई शत्रु है। प्रत्येक जीव एकाकी एकत्व लिये भ्रमण करता रहता है। स्वभाव दृष्टि से सभी जीव - एक, शुद्ध, ज्ञान-दर्शन स्वरूप, निष्कर्म है।

अन्यत्व :

आत्मा-एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध रखने वाली देह से पृथक् है। शरीर से सम्बन्ध स्थापित करने वाले माता-पिता, स्त्री-पुत्र, दासी-दास, धन-सम्पदा प्रत्यक्ष ही भिन्न हैं। जब आत्मा द्रव्य कर्म, नोकर्म, भाव कर्म से एव क्षण स्थाई पर लक्ष्यी बुद्धि से सर्वथा अन्यत्व लिए है, तब फिर अन्य किससे अपनत्व होगा। शरीर कर्म बध की दृष्टि से अभेद दिखाई देने पर भी स्वभाव दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। शरीर जड़ है, जीव चेतन है। शरीर अज्ञ है जीव

---

१ भ आ ७१५-१९ तक

विज्ञ है। नाम, स्थापना, द्रव्य एव भाव के आलम्बन से भी जीव का पर द्रव्यो के साथ अन्यत्वपना है।

अशुचि :

शरीर शुक्र शोणित मल मूत्र आदि अशुचि पदार्थों से भरा एव त्वचा से आवरित भाजन है। नव द्वारो से अत्यन्त अपवित्र घृणित पदार्थों का निरन्तर स्राव होता रहता है। इसके स्पर्श से सुगधित एव शुद्ध, पदार्थ भी दुर्गंधित और अशुद्ध हो जाते हैं, इसे शुचि करने मे सभी पदार्थ अशक्य है। वस्तुत आत्मा कर्मों से अशुचि होता है।

आस्त्रव :

प्रत्येक आत्मा स्वभाव दृष्टि से आस्रवो से रहित है। शारीरिक विषय भावो से अशुभ आस्रव और पच परमेष्ठि की भक्ति, व्रत, शील, सयम आदि द्वारा शुभास्रव होता है। इनके उदय का फल चार गतियो मे भोगना पड़ता है। आस्त्रव अशुचि है, विपरीत भाव है, दु ख का कारण है और दु ख स्वरूप है। आस्रव की क्रियाएँ परम्परा से निर्वाण का कारण नही है। पॉच इन्द्रियाँ, चार कषाय, पाँच अव्रत और पच्चीस क्रियाओ द्वारा आस्त्रव होता है। इसलिए निर्वाण पद की प्राप्ति हेतु सर्व आस्त्रवो से रहित हो नि भ्रम, आत्म स्वरूप मे स्थिर रहना श्रेयस्कर है।

संवर :

आत्मा अनादि से पुण्य कर्मों द्वारा अपने स्वभाव को झुलसाता रहा है। आस्त्रवो की श्रृखला का निरोध कर सवर मय आत्मा का आश्रय करना ही हितकर है। तथा मन वचन कार्य की प्रवृत्तियो के निरोध पूर्वक स्वरूप स्थिरता ही कल्याण कारक है।

निर्जरा :

कर्मोदय का रस अनेक प्रकार का होता है। औदयिक भाव जीव का सहज स्वभाव नही है। इसलिए ज्ञायकत्व के बल से दृश्य, श्रुत एव अनुभूत भोगो की वाछा रहित भावो द्वारा भोगने से बधे कर्मों की निर्जरा होती

है। ज्ञान, वैराग्य भावो द्वारा कर्म और कर्म फलो से विरक्त होना निर्जरा है।

कर्म विपाक से जायमान अबुद्धि पूर्वक होने वाली निर्जरा अभीष्ट सिद्धि मे अप्रयोजनीय है। ससवर निर्जरा निरनुबध होने से प्रयोजनीय है।

लोक :

स्वत सिद्ध छ द्रव्यो से व्याप्त लोक है। जीव शुभ भावो से स्वर्ग, मनुष्य और अशुभ भावो से नरक, तिर्यन्च गतियो मे भ्रमण करता है। धर्म भावो से परिणत जीव कर्मो से मुक्त हो लोक के अग्र भाग मे सिद्ध स्वरूप स्थित होता है।

शुद्ध आत्मा के ज्ञान स्वभाव मे लोकालोक स्वरूप की ज्ञप्ति होती है। ज्ञान मे लोकालोक प्रतिफलित होने से निज ज्ञान ही लोक है। इस प्रकार शुद्धात्मा से उत्पन्न परम आल्हाद सुखामृत ही आनद स्वरूप है।

बोधि दुर्लभ :

जीवो का निगोद से उद्धार होकर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय पाँच इन्द्रिय, सज्ञी, मनुष्य जन्म, उत्तम देश, श्रावक कुल, विषयो की मदत्ता कषायो की हानि, शुद्धात्मा का चितन, मनन, ध्यान और परम समरसी भावो की प्राप्ति उत्तरोत्तर दुर्लभ है। यह व्यवहार सापेक्ष कथन है। रत्नत्रय की प्राप्ति दुर्लभ कहना व्यवहार नय का कथन है। निश्चय दृष्टि से बोधि अर्थात रत्नत्रय आत्मा का सहज स्वभाव होने से सुलभ है।

धर्म :

आत्मा का धर्म चित् स्वभाव है। सागार धर्म और अनगार धर्म शुद्धात्म स्वभाव से पृथक् है। आत्म धर्म, पराश्रित भावो से सर्वथा भिन्न है। यद्यपि आत्म धर्म मे पूर्ण रूप से स्थिर रहने के लिए मुनि धर्म साधन है। धर्म का अहिसा लक्षण है, सत्य आधार है, विनय जड़ है, क्षमा बल है, ब्रह्मचर्य सरक्षक है, अपरिग्रह आलम्बन है, और उपशम काति है।

धर्म से आत्मा मे अक्षय अनत सुख आदि गुणो का आविर्भाव हो

निर्वाण पद प्राप्त होता है।[1] अत धर्म परम रसायन है, अक्षय निधियो का कोष है कल्प वृक्ष है, चिंतामणि है, रस कूप है, मोक्ष मार्ग है एव मोक्ष स्वरुप है।[2]

द्वादश अनुप्रेक्षाओ के चितन से उनके वैराग्य भावो मे प्रखरता बढ गई है। मोह विलय को प्राप्त होने से, राग गलने लगा कषायो का शमन हो ज्ञान प्रकाशित हो उठा।[3] सासारिक एव शारीरिक भोग अग्नि से तपाये हुए घृत के स्नान समान प्रतीत होने लगे।

वे विचारने लगे अतीन्द्रिय आत्म सुख पाने के लिये निर्ममत्व भावो पूर्वक नि सग वृत्ति एव प्रवृत्ति के साथ वीतराग मार्ग मे आगे बढ़ना चाहिए। वीतराग स्वरूप आत्मा का सम्यक श्रद्धान-ज्ञान-आचरण अबध होने का उपाय है। वीतराग स्वभाव का अनुभवन ध्यान एव स्थिरता सिद्धत्व प्रगट करने की अनुपम विधि है। गृहस्थ अवस्था मे चित् स्वभाव की पूर्ण प्रगटता असम्भव है। अत गृहस्थपना त्याग कर मुनि धर्म अगीकार करना ही मुझे श्रेयस् कर है।

---

१ स सि ९/७ २ स सा ना ३ ज्ञा १३/२५९।

हित्त के लिए प्रेरणा

तुमने भाग्य से अवसर पाया है इसलिये तुमको हठ से तुम्हारे हित के लिये प्रेरणा करते है। जैसा हो सके वैसे जिन शास्त्रो का अभ्यास करो। अन्य जीवो को जैसे बने वैसे शास्त्राभ्यास कराओ। जो जीव शास्त्राभ्यास करते है उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लि खवाना व पढ़ने वालो की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्य कारण उनका साधन करना क्यादि उनके द्वारा भी परम्परा कार्य सिद्धि होती है व महत् पुण्य उत्पन्न होता है।

(सत्ता स्वरूप - प भागचन्द्रजी)

दीक्षा-कल्याण

इस प्रकार विचारो मे निमग्न होने से प्रभु को प्रत्याखानावरण के पटलो को भेदन करता हुआ ज्ञान उदित हो जाता है।

महावीर प्रभु के प्रखर वैराग्य को अवधि ज्ञान से जान कर लौकातिक देव आये और उनके वैराग्य की सराहना, प्रशसा करने लगे - प्रभो आप धन्य है। आप का हृदय प्राणी मात्र के कल्याण की भावना से सजा सँवरा है। आप अगर्भ वीतरागी पुरुषोत्तम है। आपके बाह्यभ्यन्तर मे आलौकिक गुण समाविष्ट हैं। आप वस्तु स्वरूप के यथार्थ ज्ञाता, मोक्षमार्ग के नेता और कुशल हितोपदेशी हैं। आप स्वय बुद्ध है, स्वय जागरूक हैं, रत्नत्रय की एकता की पूर्णता के लिए स्वय प्रयत्नशील हैं। आप जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि ज्ञान धारी हैं, वीतराग विज्ञानी एव आत्म शोधक है। आत्म योगी, धर्म नायक हैं। जगत् और काय के स्वरूप का विचारपूर्वक किया गया वैराग्य का अमर सकल्प धन्य है। वह भूतल का सौन्दर्य है। आप के समान धार्मिक पुरुषो के द्वारा ही जगत् का कल्याण होता है। सासारिक एव शारीरिक भोगो को त्याग कर स्वतन्त्रता एव स्वावलम्बन से की गयी शुद्ध आत्म स्वभाव की आराधना मुमुक्षु जनो को उत्तमोत्तम आदर्श होगी। आप उग्र घोर एव दिव्य तपस्वी है। तप की साधना स्व-पर उपकारी है। आप बाह्य तप के साधक ही नही, अतस् तप के साधक है। आपकी शुद्धात्म साधना, मान सम्मान, धन, सम्पत्ति, राज्य ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति के लिए नही है अपितु आत्म शुद्धि की प्रेरणा के लिए है। श्रम, साधना और स्वरूप विश्रान्ति द्वारा आप सर्वज्ञ बनेगे। आप के अनुपम अलौकिक पूर्ण ज्ञान प्रकाश से जगत् मे मगलदायिनी क्राति होगी जो जीवो को ससार परिभ्रमणरूप दु खो से निवार कर अक्षय सुख की ओर ले जायेगी। इसलिए हम सभी अमर वृद आपके त्याग पूर्ण महनीय वैराग्य की भूरी-भूरी प्रशसा करते है।

चेतन अन्तर रूप निहार ।टेक।।

तन यौवन धन कुटुम्ब कबीला, विनाशीक जगजान।
द्रव्य स्वभाव सदा अविनाशी, चित मे समता धार।।१।।

अशरण जग मे शरण न कोई, दलबल देवी देव।
जनम-मरण के दु ख नाशन को, पर-ममता परिहार।।२।।

पर परिणति पद प्रीति का फल, चारो गति दु ख रूप।
चेतन का निज शुद्ध भाव ही, है भव तारन हार।।३।।

पुण्य-पाप का नाटक जग है, धारत भेष अनेक।
चिदानन्द घन पिण्ड है चेतन, शुद्ध रूप स्वीकार।।४।।

तन-मन-वाणी रागादिक से, भिन्न है आतम राम।
सुख सत्ता चैतन्य बोध से, रूप अनन्य उर धार।।५।।

हाड़-माँस-मल-रूधिर-राधमय, चर्म आवरित देह।
नित्य निरजन आतम इसमे, सयम शुचि आधार।।६।।

मोह-योग कृत कषाय वृत्तियाँ, है आस्रव दु खरूप।
शुद्ध भाव के आलम्बन से, निज का कर उद्धार।।७।।

चपल चित्त का स्व मे बसना निज पुरुषार्थ अनूप।
भाव शुभाशुभ के निरोध से, सवर है घनसार।।८।।

निज स्वभाव के साधन द्वारा निर्मल होय स्वरूप।
द्रव्य-भाव-मल सहज नाश हो, मिले मोक्ष अविकार।।९।।

षट द्रव्यो से लोक व्याप्त है, स्वत सिद्ध प्रत्येक।
ज्ञान-भाव बिन फिरा जगत मे, निज परिणाम सुधार।।१०।।

इन्द्र नरेन्द्र पद से भी दुर्लभ, व्रत सयम धारन।
बोधि समधि मरण भव नाशक, तीन रतन हितकर।।११।।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, दशलक्षण मय धर्म।
परमतत्त्व थिर केवल ज्योति, धर्म सदा सुखकर।।१।।

चेतन अन्तर रूप निहार।।

सौधर्म इन्द्र अपने परिवार सहित तीर्थंकर कुमार के दर्शनार्थ पुन आ जाता है। इन्द्र प्रभु का दीक्षाभिषेक करता है। अभिषेकोपरान्त वस्त्राभूषण पहनाते हैं। माता-पिता भी प्रभु के चरणो मे स्तुति पूर्वक रत्न समर्पण

कर, मागलिक क्रिया सम्पन्न करते हैं। परिवार जन कर-बद्ध स्तुति करते हुए अपने मे धर्म वृद्धि की भावना करते है।

अतरिक्ष मे देवगण दुदुभियाँ बजाते हुए जय-जय ध्वनि के साथ कल्पवृक्ष के सुरभित श्वेत सुमनो की वृष्टि करते हैं। तीर्थकर कुमार देवो द्वारा लाई गई सुसज्जित चन्द्र प्रभा पालकी मे पद्मराग मणियो से बने सिहासन पर बैठ जाते हैं। प्रभु की पालकी पहिले कौन उठाये इस विचार से सौधर्म इन्द्र का हृदय उद्वेलित हो उठा। मैने तीर्थंकर के गर्भ मे आने के छ माह पूर्व से कल्याण मनाने की क्रियाये प्रारम्भ की है। किन्तु प्रभु की पहले पालकी उठाकर मै चलने मे असमर्थ हूँ। मै इस पयार्य मे सयम अगीकार नही कर सकता हूँ। काश इस पर्याय मे सयम धारण करने की योग्यता होती तो मै तीर्थंकर प्रभु के साथ ही दीक्षा अगीकार कर लेता। प्रभु की पालकी को मै ही उठाकर दीक्षा वन की ओर ले जाता किन्तु देव पर्याय मे दीक्षा अगीकार करने की पात्रता न होने से आज मै लाचार हूँ। मनुष्य भव की अपेक्षा देव पर्याय मे इन्द्र का पद भी क्षुद्र है। प्रभु की पालकी मनुष्य ही उठाकर ले जायेगे। मनुष्यो मे जिन दीक्षा अगीकार करने की पात्रता है।

मनुष्यो के हृदयो मे अनुपम आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। हमारा सौभाग्य है कि प्रभु को आज दीक्षा बन की ओर ले जाने के लिए देवो द्वारा लाई गई चन्द्रप्रभा पालकी को सर्वप्रथम हम अपने कधो पर उठाकर ले चलेगे। हमारे मे प्रभु जैसी दीक्षा अगीकार करने की योग्यता है। देवो और मनुष्यो की जय-जय ध्वनि के साथ चन्द्रप्रभा पालकी को मनुष्य उठाकर आगे बढ़ने लगते है।

दीक्षार्थ वन विहार का चल समारोह अनुपम, अद्वितीय वैराग्य की छटा बिखेरता हुआ नगर के प्रमुख मार्गो से होता हुआ चल पड़ा। पालकी के दोनो ओर देव देवागनाऐ गगन मडल को सुरभित कर रहे थे। पालकी के आगे-आगे दण्डो पर बधी वृषभ ध्वजाएँ लिये अभिजात वर्ग चल रहा था। चल समारोह मे केसर वर्णी सुकुमार कपूरी तन वाले अनेक राजा-महाराजा कदम से कदम मिलाकर चलते हुए अपने को धन्य समझ रहे

थे। वैशाली के इतिहास मे आज का यह दृश्य अनुपम एव अपूर्व था।

समारोह दर्शको का हृदय विरागता के रग से रगित हो गया। जन-जन के हृदय मे जिन दीक्षा अगीकार करने के भावो का ज्वार उठने लगा। अपनी-अपनी पात्रतानुसार सभी जीवो ने सयम अगीकार किया।

नगर के बाहर चल समारोह स्थिर हो जाता है। धीरे-धीरे जन समूह बिखरने लगता है। राजा महाराजाओ से उद्वाहित पालकी को इन्द्रादि अपने कधो पर स्थापित कर दीक्षा वन की ओर ले जाते हैं।

अशोक वृक्ष के नीचे शचि ने चदन आदि से चर्चित, विभिन्न रगावलियो से विभूषित, प्रति क्षण नवीन-नवीन आभा से स्फुरायमान एक विशाल उपल शिला रखी थी। शिला के ऊपर आकाश मे मनोज्ञ रत्न जड़ित मण्डप का निर्माण किया। स्वस्तिक अकित उपल शिला पर आसीन हो प्रभु ने सभी वस्त्राभूषण उतार कर अलग रख दिये। सर्व सावद्य योग का स्थूल और सूक्ष्म अर्थात् हिसा आदि अव्रतो का, मन वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से यावज्जीवन त्यागोपरान्त नम सिद्धेभ्य कह पँच मुष्टि केश लोच कर यथा जात निर्विकार, जैनेश्वरी दीक्षा अगीकार कर ली। स्वरूपाचरण मे स्थिरता की वृद्धि से अप्रमत्त दशा प्रगट हो जाती है। अप्रमत्त मे अधिक समय न रह सकने से प्रमत्त दशा मे आते है। इस प्रकार अप्रमत्त से प्रमत्त और पुन प्रमत्त से अप्रमत्त मे झूले की भाति झूलते रहते है।

उनमे पृथ्वी के समान सहनशीलता, भानु की तरह प्रकाशमान, आकाश तुल्य निष्पृहता, बैल सदृश्यं भद्र प्रकृति, समुद्र के समान मैल को फेकने वाले, चन्द्रकिरण सम शीतलता, पवन की भाति नि सगता, सुमेरु जैसी दृढता एव अचलता, विचारो मे अलौकिकता विद्यमान है।[१]

आपका जीवन वीतराग विज्ञान एव अहिसा धर्म का दिवाकर बन जगत् के जीवो को अत चित् प्रकाश कर भव रोग से पीडितो का अचूक रोग नाशक रसायन होगा।

- ० - ० -

---

१ ध

मुनि जीवन में चिन्तन

वे विचार करते हैं, मैं न प्रमत्त हूँ और न अप्रमत्त हूँ। मैं शुद्ध स्वभाव मय आत्मा हूँ। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार नय से दृष्टिगत हैं। निश्चय दृष्टि से मै नव तत्वो से भिन्न चित् स्वभाव से अभिन्न एकत्व लिये हूँ।[1] चित् स्वभाव के रत्नाकर मे सदैव निमज्जित रहना आत्म सिद्धि का सर्वोत्कृष्ट रसायन है। ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञायक अभेद है। पर ज्ञेयो का ज्ञायक औपचारिक कथन है। ज्ञायक स्वभाव सिद्धो के सदृश्य निर्विकार निरुपाधि स्वरूप है।

आत्मा पर द्रव्य, काल, भाव, कर्त्ता, कर्म आदि से पृथक् है। अपने चित् स्वभाव से अपृथक्, शुद्ध, अचल, तेज, निज रस से परिपूर्ण टकोत्कीर्ण महिमा मय ज्ञान पुज है। वह निज स्वभाव का सचेतन करता हुआ ज्ञानानन्द मे मग्न रहता है। निज रस के प्रसार से पूर्ण सुविशुद्ध निर्विकल्प स्वरूपाचरण मे रमण करने से केवल ज्ञान जैसी ही अनुभूति होती है।

प्रत्येक द्रव्य स्वाधीन रूप से परिणमिन करते हैं। कर्म एव कर्मो के फल पौद्गलिक है। आत्मा ज्ञान पुज है। इसलिए आत्मा कर्मों के फलो का वेदक नही हो सकता। पुद्गल कर्म फल आत्मा से नही कहते तुम मुझे ग्रहण करो। आत्मा भी स्वभाव से च्युत हो उन्हे ग्रहण नही करता है। वह अपने परिपूर्ण, अखण्ड, शुद्ध, अचल ज्ञान की महिमा से स्वज्ञान को जानता हुआ रागादि रूप परिणमित नही होता।[2]

आत्मा पारिणामिक भाव प्रधान होने से परम स्वभाव सम्पन्न है।[3] तथा ज्ञान आनद आदि गुणो का आधार होने से परम है।[4] परम आत्मा को परमात्मा कहते है। जो कारण और कार्य के भेद से दो प्रकार का है। कारण परमात्मा और कार्य परमात्मा। कारण परमात्मा ससारी है, अनादि अनन्त है। कार्य परमात्मा मुक्त हैं, सादि अनन्त है।

आत्मा अलिग ग्राह्य होने से ज्ञान द्वारा ही अनुभूत होता है। अतीन्द्रिय

---

१ स सा क ६, २ स सा क २२२ ३ पारिणामिक भाव प्रधानत्वेन परमस्वभाव आ प ६, ४ परमानन्द ज्ञानादि गुणाधारत्वात् परम पा का ता पृ १०४

आनन्दस्वरूप उत्कृष्ट आत्म ज्योति का निरन्तर अनुभवन परम सिद्धि है। जो ज्ञानानुभूति के बल से अतर्मुहूर्त तक ज्ञान का ज्ञान मे स्थितिकरण से होती है।[1]

हिंसा आदि अव्रतो से पापबध होता है और अहिंसा आदि व्रतो से पुण्य बन्ध होता है। बध दृष्टि से अव्रतो की भाँति व्रत रूप परिणमन के विकल्प भी त्याज्य हैं।[2]

श्रेणी आरोहण एवं केवल ज्ञान की उत्पत्ति

मुनिश्वर के सम्पूर्ण व्यक्ताव्यक्त प्रमाद नष्ट हो चुके है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, अट्ठाईस मूल गुण तथा शील से युक्त होते हुए स्वरूपा चरण मे लीन है।[3]

आत्मा का परिणाम प्रत्येक अतमुहूर्त मे परिवर्तित होता रहता है। छठे गुणस्थान के अतिम समय मे अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशकीर्ति, अरति और शोक के बध की व्यच्छित्ति हो जाती है। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन सबधी क्रोध, मान, माया, लोभ बारह और हास्य, रति, आदि नौ मिलाकर कुल इक्कीस प्रकृतियो के क्षयार्थ या उपशमार्थ अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के परिणामो की प्राप्ति का प्रयत्न करते है।

अध करण के काल मे अतीत अनागत वर्तमान त्रिकालवर्ती नाना जीव सबधी विशुद्धता रूप इस करण के सर्व परिणाम असख्यात लोक प्रमाण हैं। प्रथम समय के विशुद्ध परिणामो से लेकर अतिम समय पर्यन्त समान वृद्धिकर वर्द्धमान है। अप्रशस्त कर्मो के निम्बू और काजी रूप (द्विस्थानीय) अनुभाग प्रति समय अनन्त गुणित हीन बधता है। प्रशस्त कर्मों के गुण, खाड (चतु स्थानीय) अनुभाग प्रति समय अनत गुणित बधता है। स्थिति बध का काल अन्तमुहूर्त है। एक-एक स्थिति बध का काल पूर्ण होने पर अन्य स्थिति का पल्योपम के सख्यातवे भाग से भी हीन बध होता है। अर्थात् प्रथम समय सम्बन्धी बध से उसी का अतिमसमय सम्बन्धी बध सख्यात गुण हीन होता है।

---

१ स श ८६ २ स श ८३ ३ गो जी ४६

इस गुणस्थान मे चार आवश्यक कार्य होते है। १ प्रति समय परिणामो मे अनन्त गुणित विशुद्धता। २ अप्रशस्त प्रकृतियो का केवल द्विस्थानीय अनुभाग बध और उसमे अनत गुणित हानि। ३ प्रशस्त प्रकृतियो के चतु स्थानीय अनुभाग बध मे अनन्त गुणित वृद्धि। ४ स्थिति बधापसरण। स्थिति बधापसरण अध करण के प्रथम समय से लेकर गुण सक्रमण पूरण होने तक होता है। प्रायोग्य लब्धि से भी स्थिति बधापसरण होता है।

सातिशय सप्तम गुणस्थान मे मोहनीय कर्म क्षयार्थ परिणाम होने से परिणामो मे उत्तरोत्तर विशुद्धता बढ़ती जाती है। विशुद्धता बढ़ने का क्रम सभी जीवो का एक जैसा नही होता है। किसी जीव को प्रथम समय मे जितना विशुद्ध परिणाम होता है, उतना विशुद्ध परिणाम किसी दूसरे जीव को दूसरे समय मे, तीसरे जीव को तीसरे समय मे, चौथे जीव को चौथे समय मे हो सकता है। इस करण के माडने वाले प्रत्येक जीव के परिणाम आगे-आगे के समयो मे उत्तरोत्तर अनत गुणित विशुद्धता लिए होते है।

जीव मोहनीय कर्म का क्षय करता हुआ क्षपक श्रेणी आरोहण करता है। असयत आदि गुणस्थानो मे दर्शन मोह की प्रकृतियो का क्षय कर लिया है। देव आयु, नरक आयु, तिर्यच आयु का सत्व नही है। मनुष्य आदि चार आयु का बध नही है। क्षायिक सम्यग्दर्शन, पीत, पद्म लेश्या, अनाहारक और धर्म ध्यान सयुक्त है। अध करण परिणामो का काल समाप्त होते ही जीव अपूर्वकरण गुणस्थान मे आ जाते है।[1] अध करण के अतिम समय मे स्थिति बध का सत्व दोनो ही घटाकर अत कोड़ाकोड़ि सागर प्रमाण रहता है।

अपूर्वकरण गुणस्थान मे परिणाम अपूर्व-अपूर्व होते हैं। इसका काल अध करण के काल से सख्यात वे भाग है। अपूर्व करण के परिणाम अध करण के परिणामो से असख्यात लोक गुणित है। इन परिणामो मे उत्तरोत्तर प्रति समय समान वृद्धि होती जाती है। मोहनीय की शेष प्रकृतियो का क्षपण करने मे उद्यत होते हैं। इस गुणस्थान मे प्रथम समय से ही चार आवश्यक

---

१ (क्ष सा भा १/३९२)

होते हैं। १ गुण श्रेणी निर्जरा, २ गुण सक्रमण ३ स्थिति खडन ४ अनुभाग खण्डन।[1] अनुभाग खण्डन पूर्व बद्ध अप्रशस्त प्रकृतियो के अनुभाग का हुआ करता है।विभिन्न समय स्थित जीवो के पूर्व मे अप्राप्त अपूर्व परिणाम होते है। इसलिए उन्हे अपूर्वकरण कहते हैं। सज्वलन कषाय का अति मंद उदय होने से उन्हे अपूर्व परम आल्हाद सुखानुभव रूप परिणाम होते हैं। इस गुणस्थान मे यद्यपि कर्मो का क्षय नही होता। प्रत्येक समय मे असख्यात गुणित रूप से कर्म प्रदेशो की निर्जरा करता है। अनत गुणित विशुद्धि से बढ़ता हुआ एक-एक अतर्मुहूर्त मे एक-एक स्थिति काण्डको का घात करता हुआ सख्यात हजार स्थिति काण्डको का घात करता है। और उतने ही स्थिति बधापसरणो को करता है।[2] अपूर्व करण गुणस्थान मे स्थिति बध घटकर पृथकत्व सहस्त्र सागर प्रमाण और स्थिति सत्व घटकर पृथकत्व लक्ष सागर प्रमाण रह जाता है।

अपूर्वकरण गुणस्थान के सात भागो मे से पहले, छठे और सातवे भाग मे से पहले भाग मे निद्रा और प्रचला छठे भाग के अत समय मे तीर्थकर प्रकृति, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पचेन्द्रिय जाति, तेजस, कार्माण, आहारक शरीर, आहारक आगोपाग, सम चतुस्त्र सस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, चतुष्क, वैक्रियक शरीर व आगोपाग, वर्णादि अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, त्रस, आदि नौ इस तरह 'तीस प्रकृतियो का और सातवे भाग मे हास्य, रति, भय, जुगुप्सा ये चार प्रकृतियो की बध व्युच्छित्ति होती है। अतीत अनागत कर्मो के क्षय के अभिमुख हो क्षपक श्रेणी का आरोहण किया जाता है।

अनिवृत्तिकरण - अपूर्व करण से सख्यात वे भाग अनिवृत्तिकरण का काल है। अनिवृत्तिकरण के परिणामो की सख्या उसके काल के समान है। अर्थात् अनिवृत्तिकरण के काल के जितने समय है उतने ही उसके परिणाम है। अनिवृत्तिकरण का काल अतर्मुहूर्त है। जिन परिणामो की निवृत्ति नही होती उन्हे अनिवृत्ति कहते है, इसमे प्रत्येक समय मे एक जैसे परिणाम होते हैं। जघन्योत्कृष्ट का भेद नही होता। विशुद्ध परिणामो के बल से निर्विकल्प

---

१ (गो जी जी ५७) २ (द्र स टी १३/१४) ३ (घ ए/९)

समाधि मे प्रवेश के अभिमुख हो जाते हैं। वे निज अति विमल ध्यानाग्नि की शिखाओ से कर्म वन को जला देते है।[1] प्रति समय परिणामो की विशुद्धि मे अनत गुणित वृद्धि होती है। प्रथम समय मे विशुद्ध परिणामो से, द्वितीय समय मे परिणामो की विशुद्धि अनत गुणित होती है। इस प्रकार पूर्व समय से उत्तरोत्तर समयवर्ती विशुद्ध परिणाम अविभाग प्रतिच्छेद की अपेक्षा अनत गुणा अनुक्रम से बढ़ते जाते है।[2]

इस गुणस्थान मे स्थिति काण्डक घात, अनुभाग काण्डक घात, बधापसरण गुणश्रेणी निर्जरा और गुण सक्रमण मे भी समानता है। अन्य स्थिति खण्ड, अन्य अनुभागखण्ड, अन्य स्थिति बधापसरण का आरम्भ होता है। पूर्व मे अपकर्षित प्रदेशाग्र से असख्यात गुणित प्रदेशो का अपकर्षण कर अपूर्व करण के समान गलितावशेष गुणश्रेणी को करता है। इस प्रकार सहस्त्रो स्थिति बधापसरण, स्थिति काण्डक घात, अनुभाग काण्डक घातो को करता है। इस गुणस्थान के ९ भागो मे क्रमश प्रथम भाग मे नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, विकलोन्द्रिय ३ स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, उद्योत, आताप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर ये प्रकृतियो को क्षय करता है। दूसरे भाग मे अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बधी क्रोध, मान, माय, लोभ ये प्रकृतियो का क्षय करता है। तीसरे भाग मे नपुसक वेद, चौथे भाग मे स्त्रीवेद, पाँचवे भाग मे हास्य, अरति शोक, भय, जुगुप्सा ये छ , छठे भाग मे पुरुष वेद, सातवे भाग मे सज्वलन क्रोध, आठवे भाग मे सज्वलन मान, नौवे भाग मे सज्वलन माया का क्षय करता है। इस प्रकार इस गुणस्थान मे ३६ प्रकृतियो का क्षय हो जाता है।[3]

अनिवृतिकरण गुणस्थान मे क्रम करण द्वारा मोहनीय तीसीय, वीसीय, वेदनीय नाम व गोत्र इन सभी प्रकृतियो के स्थिति बध, व स्थिति सत्व के पर स्थानीय अल्प बहत्व मे विशेष क्रम से परिवर्तन होता है। अत मे नाम व गोत्र की अपेक्षा वेदनीय का स्थिति बध व सत्व ड्योढा रहा जाता है।

---

१ (गो जी मू ५६, ५७) २ (गो जी जी प्र ५७) ३ (गा क न ३८, ३३९)

सूक्ष्म सापराय - इस गुण स्थान मे परिणामो मे कुसमली रग के समान अत्यल्प रागाश शेष रह गया है।[1] सामायिक, छेदापस्थापना सयम की विशुद्धता से अधिक विशुद्धता मय परिणाम होते हैं। जो यथाख्यात चारित्र सयुक्त जीव से किंचित मात्र हीन हैं।[2] निज परमात्म तत्व की भावना के बल से सूक्ष्म कृष्टि रूप लोभ कषाय के क्षपक है। साम्पराय (कषाय) को सूक्ष्म रूप से क्षय कर दिया है।[3] चारित्र मोह मे कषाय अति सूक्ष्म है।[4] सूक्ष्म मोहनीय कर्म के बीज को क्षय के मुख मे ढकेल दिया है।[5] तथा अतीन्द्रिय निज शुद्धात्मा के बल से सूक्ष्म लोभ नामक साम्परायिक कषाय को सूक्ष्म रूप से क्षय कर दिया है।[6] सूक्ष्म लोभ, पृथकत्व वितर्क ध्यान का अभाव कर क्षीण मोह गुणस्थान को प्राप्त हो जाते हैं।

सूक्ष्म साम्पराय के अतिम समय मे ज्ञानावरणीय की ५, दशर्नावरणीय की चक्षुदर्शनावरणीय आदि ४, और अतराय की ५, यशकीर्ति और उच्चगोत्र इस प्रकार १६ प्रकृतियो की बध व्युच्छित्ति हो जाती है।

क्षीण कषाय - (क्षीण मोह) कषाय रहित निज शुद्ध आत्म भावना के बल से मोह कर्म पूर्णरूप से नि शेष क्षीण हो गया है। उनका चित्त स्फटिक के निर्मल भाजन मे रखे स्वच्छ जल के समान हो गया है।[7] छद्मस्थ होते हुए भी यथाख्यात चारित्र को पाकर वीतराग सज्ञा को प्राप्त हो जाते है। अर्थात् क्षीण कषाय के साथ वीतराग होने से इन्हे क्षीण कषाय वीतराग कहते हैं। इस गुण स्थान मे पहले मोहनीय का नाश होने से क्षीण मोह भी कहते है। इस गुणस्थान मे एक योग के आश्रय से एक शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान करते है।[8] मोहनीय का समूल क्षयार्थ उद्यत परिणाम ने अनत गुणित विशुद्धता को पाकर ज्ञानावरणीय की सहायभूत बहुत प्रकार की प्रकृतियो का निरोध कर दिया है। अन्य कर्मों की स्थति न्यून और क्षय कर रहे है। अर्थ व्यजन और योग सक्राति से रहित मेरु समान अचल मन हो गया है। वैडूर्य मणि के समान निरलेप हैं। चार घातिया कर्मों का क्षय कर रहे हैं। उपयोग निज शुद्ध आत्म सुखानुभव रूप पर्याय मे प्रवर्त रहा है। अथवा निरुपाधि स्व सवेदन गुण मे से किसी एक मे प्रवर्तता है।

---

१ गो जी मू ५८,५९ २ गो जी कावृ पृ ६० टी ३ स सा ९/१ ४ स सा ९/१८ ५ रा वा ९/१८ ६ रा वा ९/१८ ७ गो जी मू ६२ ८ भ आ मू १८८३

उसी मे निज आत्मानुभव रूप भाव के बल से स्थिर रहता है। गुणस्थान के अंतिम समय मे ज्ञानावरणीय की पाँच, दर्शनावरणीय की चक्षु दर्शनावरणीय आदि चार, अतराय की पाँच, निद्रा, और प्रचला इस प्रकार सोलह प्रकृतियो का क्षय हो जाता है और केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

सयोग केवली - कैवलज्ञान मे सम्पूर्ण लोकालोक दर्पण तल वत् प्रतिफलित हो रहा है। ज्ञान, ज्ञान को जान रहा है, देख रहा है और ज्ञानस्थ है। अर्थात् ज्ञान ही ज्ञाता और ज्ञेय हो गया है। ज्ञान ज्ञायक और ज्ञेय एक ही भाव से स्थित है।

प्रभु केवल ज्ञान सूर्य किरणो से केवल ज्ञान आदि नौ लब्धियो को प्राप्त परमात्म सज्ञा के धारी होते हैं। ज्ञान दर्शन असहाय हो कार्य करता हैं। अनत चतुष्टय से विराजमान रहते है। इस गुणस्थान मे क्रियाएँ औदायिकी होने पर भी मोहादि कर्मो के क्षय होने से क्षायिकी मानी जाती है।[1] प्रभु का परम औदारिक शरीर पृथ्वी से ५००० धनुष प्रमाण ऊपर चला जाता है। परमौदारिक शरीर निगोदिया जीवो से रहित होने से वह प्रत्येक अप्रतिष्ठित शरीर कहलाता है। कवलाहार रहित नो कर्म आहार सहित है। द्रव्येन्द्रियाँ हैं किन्तु भावेन्द्रियाँ नही है। इसलिए द्रव्यमन, मनयोग, पाँच इन्द्रियाँ, सयम, ध्यान, ग्यारह परिषह कहना उपचरित कथन है।

चारित्र मोह का नाश होने पर निष्क्रिय आत्मा मे रमणता से अतीन्द्रिय अव्यावाध, समत (परिपूर्ण) सौख्य तथा ज्ञान से समृद्ध रहते हुए परम सौख्य का ही ध्यान करते हैं।[2]

सयोग केवली भगवान एक भी कर्म का क्षय नही करते। किन्तु अवशिष्ट रहे हुए चार अघातिया कर्मों मे से आयु कर्म को छोड़कर शेष नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों के सत्व की प्रति समय निर्जरा करते हुए ससार मे जीवन पर्यन्त विहार करते है। दिव्य ध्वनि द्वारा प्राणी मात्र को धर्मोपदेश देते रहते हैं। इस गुणस्थान का जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टकाल आठ वर्ष अन्तमुहूर्त से कम एक पूर्व कोटि वर्ष है।

---

१ प्र सा मू ४५   २ प्र सा मू १९७ १८

समवशरण

तीर्थंकर महावीर प्रभु ने अर्हंत पद प्राप्त कर लिया। उनके ज्ञान आलोक से विश्व जग-मगा उठा। सौधर्म इन्द्र ने कुबेर को बुला कर उसे समवशरण की रचना करने का आदेश दिया। आज्ञानुसार ऋजुकूला के तट पर विशाल भव्य समवशरण रचा गया। समवशरण की शोभा अनुपम थी। समवशरण आत्मानुशासन/उत्तम क्षमा का परम प्रतीक है। समवशरण मे तीर्थंकर महावीर प्रभु इन्द्रनील मणि के सिंहासन से चार अगुल अतरिक्ष मे पद्मासन दृष्टि गोचर होते है। सिहासन से अस्पर्शित तथा निर्लिप्त, वीतराग भावो के परम प्रतीक है। समवशरण मे जाने वाले सभी जीवो की परस्पर जन्म-जात शत्रुता विस्मृत हो जाती है। मृगेन्द्र, मृग, गाय, मयूर, सर्प, मूषक, मार्जर सभी निर्मल भावो से धर्म सभा मे एक ही स्थान पर बैठ कर देशना रूप अमृत पान करते है। तीर्थकर महावीर की धर्म सभा सर्वोदय तीर्थ है। विश्व के विभिन्न स्थानो से आने वाले जीव सभा मण्डप मे पहुँचते ही आधि, व्याधि और उपाधि भूल जाते है। धर्ममय वातावरण मे हो, आत्म हित की प्राप्ति और अहित परिहारार्थ, द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायित्व, उत्पादत्व, व्ययत्व और ध्रौव्यत्व का स्वरूप जिनेन्द्र प्रभु से समझते है।

समवशरण की सामान्य की भूमि गोल होती है। उसकी प्रत्येक दिशा मे आकाश मे बीस-बीस हजार सीढियाँ है। इसमे चार कोट, पाँच वेदियाँ है। इनके मध्य मे आठ भूमियाँ हैं और सर्वत्र अन्तर भाग मे तीन-तीन पीठ है। प्रत्येक दिशा मे सीढियो से लेकर अष्ट भूमि के भीतर गधकुटी की प्रथम पीठ तक एक-एक वीथी (सड़क) है। वीथियो के दोनो ओर वीथियो जितनी लम्बी दो वेदियाँ होती हैं। आठ भूमियो के मूल मे बहुत से तोरण द्वार है। सर्व प्रथम धूलीशाल प्रथम कोट है। इसकी चार दिशाओ मे चार तोरण द्वार है। प्रत्येक द्वार के बाहर मगल द्रव्य, नवनिधि, धूप घट है। प्रत्येक द्वार के मध्य दोनो ओर एक-एक नाट्यशाला है। धूलीशाल कोट के भीतर चैत्य प्रासाद भूमियाँ है। जहाँ पाँच-पाँच प्रासादो के अतराल से एक-एक चैत्यालय स्थित हैं। इस भूमि के भीतर पूर्वोक्त चार वीथियो के पार्श्व भागो मे नाट्यशालाएँ है। जिनमे बत्तीस रग भूमियाँ है। प्रत्येक

रग भूमि मे बत्तीस भवन वासी कुमारियाँ नृत्य करती हैं। प्रथम भूमि के मध्य भाग मे चार वीथियो के मध्य गोल मानस्तम्भ भूमि है। इस प्रथम भूमि से आगे प्रथम वेदी है। जिस का सम्पूर्ण कथन धूलिशाल कोट वत् है। इस वेदी से आगे खातिका भूमि है। जिसमे जल से पूर्ण खातिकाएँ है। इसके आगे पूर्व वेदिका सदृश ही द्वितीय वेदिका है। इसके आगे लता भूमि है। जो अनेक क्रीड़ा पर्वतो व वापिकाओ से सुशोभित है। इसके आगे दूसरा कोट है। जिसका वर्णन धूलिसाल वत् है। इसके आगे चौथी उपवन भूमि है। जो अनेक प्रकारो के वनो, वापिकाओ व चैत्य वृक्षो से सुशोभित हैं। सर्व वनो के आश्रित सब वीथियो के दोनो पार्श्वभागो मे दो-दो (कुल १६) नाट्य शालाएँ हैं। आदि की आठ नाट्य शालाओ मे भवनवासी देव, कुमारियाँ और आगे की आठ मे कल्पवासी देव, कुमारियाँ नृत्य करती हैं। इसके पूर्व सदृश तीसरी वेदी है। इसके आगे ध्वज भूमि है। जिसकी प्रत्येक दिशा मे सिंह, गज, आदि दश चिन्हो से चिह्नित ध्वजाएँ हैं। प्रत्येक चिन्ह वाली एक सौ आठ ध्वजाएँ हैं। अन्य एक सौ आठ क्षुद्र ध्वजाएँ है। प्रत्येक ध्वजा अन्य एक सौ आठ क्षुद्र ध्वजाओ से सयुक्त है। इस प्रकार (१०x१०८x४) + (१०x१०८x१०८x४) = ४७०८८०/८२० । इसके आगे तृतीय कोट है जिसका समस्त वर्णन धूलिसाल कोट के सदृश है। इसके आगे छठी कल्प भूमि है। जो दस प्रकार के कल्प वृक्षो से तथा अनेक वापिकाओ, प्रासादो, सिद्धार्थ (चैत्यवृक्षो) वृक्षो से सुशोभित है। कल्प भूमि के दोनो पार्श्व भागो मे प्रत्येक वीथी के आश्रित चार-चार (कुल १६) नाट्यशालाएँ हैं। यहाँ ज्योतिषि कन्याएँ नृत्य करती हैं। इसके आगे चतुर्थ वेदी है जिसके आगे भवन भूमियाँ हैं। जिनमे ध्वजा पताका युक्त अनेक भवन है। इस भवन भूमि के पार्श्व भागो मे प्रत्येक वीथी के मध्य मे जिन प्रतिमा युक्त नो-नो (७२) स्तूप हैं। इसके आगे चतुर्थ कोट है। इसके आगे श्री मण्डप भूमि है। इसमे कुल सोलह दीवारे व उनके बीच बारह कोठे हैं। इनमे पूर्व दिशा से आदि कर क्रमश गणधर आदि मुनि गण, कल्पवासी देवियाँ, आर्यिकाएँ व श्राविकाएँ ज्योतिषि देवियाँ, व्यन्तर देवियाँ, भवन वासी देवियाँ, भवन वासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषि देव, कल्पवासी देव, मनुष्य व तिर्यंच बैठते हैं। इसके आगे पाँचवी वेदी है जो चतुर्थ कोट के सदृश है। इसके आगे प्रथम पीठ हैं जिस पर बारह कोठो व चार वीथीयो के सम्मुख सोलह-सोलह सीढियाँ हैं। इस पीठ पर चार दिशाओ मे सिर पर धर्म चक्र लिए

चार यक्षेन्द्र खड़े रहते हैं। इस पीठ पर चढ़कर पूर्वोक्त बारह सभाओं के जीव प्रदिक्षिणा देते हैं। प्रथम पीठ के ऊपर द्वितीय पीठ है। जिसके चार दिशाओ मे सोपान हैं। इस पीठ पर सिंह, बैल आदि चिन्हित ध्वजाएँ, अष्ट मगल द्रव्य, नव निधि, धूपघट आदि शोभित हैं। द्वितीय पीठ के ऊपर तृतीय पीठ है। जिसके चार दिशाओं मे आठ-आठ सोपान हैं। तीसरी पीठ के ऊपर एक गध कुटि है। जो अनेक ध्वजाओ से सुशोभित है। गध कुटि के मध्य मे पाद पीठ सहित सिंहासन है। जिस पर भगवान चार अगुल ऊपर अतरिक्ष मे विराजमान है।[१]

यह विस्तार अवसर्पिणि काल का है। उत्सर्पिणि काल मे इसके विपरीत है। अवसर्पिणि काल मे जिस प्रकार प्रथम तीर्थ से अतिम तीर्थ, तप, भूमि आदि के विस्तार उत्तरोत्तर कम होते गए। उसी प्रकार उत्सर्पिणि काल मे उत्तरोत्तर बढ़ते होगे। विदेह क्षेत्र के सम्पूर्ण तीर्थकरो के समवसरण की भूमि बारह योजन प्रमाण ही रहती है।

प्रभामण्डल (भामण्डल) :-

तीर्थकर महावीर प्रभु के केवलज्ञान भास्कर उदित होने से उनकी सौम्य मुद्रा मे सर्वज्ञता तरगित हो रही थी। प्रभु के बाह्य, पृष्ठ मे, शरीर की सूक्ष्मता, उज्जवलता, निर्मलता तथा विशुद्धता के कारण सर्वांगो से विशिष्ट आभा विनिर्गत हो रही थी। जिसे प्रभामण्डल कहा जाता है। यह उनके परमौदारिक दिव्य देह की दिव्य दीप्ति है। यह प्रतिक्षण नूतन आभावान परिलक्षित होती है।

तीर्थंकर प्रभु के बहिरग लक्ष्मी के रूप मे प्रभामण्डल और समवशरण है तथा अतरग लक्ष्मी के रूप मे केवलज्ञान है। प्रभामण्डल मे जीवो के भूत कालीन तीन भव, वर्तमान कालीन वर्तमान भव और भविष्यत कालीन एक हो तो एक दो हो तो दो और तीन हो तीन भव, इस प्रकार सात भव दिखाई देते है। प्रभु का शुद्ध भावो से किया गया दर्शन, दर्शक को भावो मे शाति तथा पवित्रता का अनुभव कराता है।

१ (ति प गा ४ भावार्थ)

समवशरण की महिमा

समवशरण मे आते ही इन्द्र वृन्द तीर्थंकर महावीर प्रभु की भक्ति भाव से अनेक नामो द्वारा पूजा स्तुति कर रहे थे।

समोशरण में इन्द्रों द्वारा जिनेन्द्र स्तुति १००८ नामो द्वारा

: जिन शतक :

१ **जिन** = विषय, कषाय रूपी आभ्यन्तर कर्म शत्रुओ को जीत लिया है। अत जिन कहलाते है।

२ **जिनेन्द्र** = चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवे गुणस्थान तक के जीवो को जिन कहते है। इन जिनो मे आप इन्द्र के समान होने से आप जिनेन्द्र कहलाते है।

३ **जिनराट्** = आप जिनो मे अनतचतुष्टय रूप ऐश्वर्य सम्पन्न होने से आप जिनराट् है।

४ **जिनपृष्ठ** = जिन + पृष्ठ = प्रधान। जिनो मे प्रधान है अत आप जिनपृष्ठ है।

५ **जिनोत्तम** = जिनो मे उत्तम है। बाह्याभ्यन्तर सर्व कर्म शत्रुओ के जीतने से आप जिनोत्तम है।

६ **जिनाधिप** = (जिन + अधिप = प्रधान, शासक) जिनो के शासक होने से आप जिनाधिप है।

७ **जिनाधीश** = (जिन = सर्व साधु + अधीश = स्वामी) सर्व साधुओ के स्वामी होने से आप जिनाधीश है।

८ **जिनस्वामी** = गणधर आदि से पूजित होने के कारण आप जिनस्वामी है।

९ **जिनेश्वर** = (जिन + ईश्वर) जिनो के ईश्वर हैं। सुर, असुर, नर आदि से पूजित है। इसलिये आप जिनेश्वर हैं।

१० **जिननाथ** = जिनो के नाथ हैं। तीन लोक के तारण-तरण होने से आपको जिननाथ कहते है।

११ **जिनपति** = जिनो के पति है। श्रावक साधुओ के मोक्षमार्ग के सरक्षक

होने से आप जिन पति हैं।

१२ **जिनराज** = जिनो के राजा है। तीन लोक मे सभी जिन आपकी आज्ञा मानते हैं। अत आप जिनराज कहलाते हैं।

१३ **जिनाधिराट्** = जिनो के अधिराज हैं। गणधर आदि जिन आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। अत आप जिनाधिराट् हैं।

१४ **जिनप्रभु** = जिनो के प्रभु है। तीन भुवनो के सर्व जिनो मे आप शिरोमणि होने से जिनप्रभु कहलाते है।

१५ **जिनविभु** = जिनो के विभु = ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। तीन लोक के सर्व जिनो मे सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण आप जिनविभु कहे जाते हैं।

१६ **जिनभर्त्ता** = जिनो के भर्त्ता = भरण पोषण करने वाले हैं। अर्थात् आत्माओ को सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र मयी अमृत पान कर चित् स्वभाव का पोषण करते हैं। इसलिये आप जिन भर्त्ता कहलाते है।

१७ **जिनाधिभू** = जिनो के अधिवास हैं। अर्थात जितेन्द्रिय जिनो को निज शुद्धात्म स्वभाव मे वास करने के लिए चैतन्यस्वाभावी भूमि प्रदानकरते है। अत आप जिनाधिभू कहलाते हैं।

१८ **जिननेता** = जिनो को मोक्षमार्ग प्रदर्शक होने से आप जिन नेता है।

१९ **जिनेशान** = (जिन + ईशान = प्रधान) सर्व जिनो मे रत्नत्रय धर्म की एकता-रूप शिव मार्ग मे प्रधान होने से आप जिनेशान हैं।

२० **जिनेन** = (जिन + इन = योग्य) जिनो मे आप सर्व गुणो की विशुद्धि से विशेष योग्य है। अत आप जिनेन हैं।

२१ **जिननायक** = जिनो के नायक हैं। समवशरण आदि विभूति सपन्न होने से आप सर्व जिनो के नायक है। अत आप जिननायक है।

२२ **जिनेट** = (जिन + ईट = स्वामी) जन्म, जरा, मृत्यु विजेताओ मे आप प्रमुख है। इसलिये आप जिनेट हैं।

२३ **परिवृढ** = सर्व जिनो मे प्रधान हैं। चित् स्वभाव की अचलता मे प्रधान होने से आप परिवृढ है।

२४ **जिनदेव** = जिनो के देव हैं। अर्थात् आप विश्वव्यापी अथवा सर्व जिनो से पूज्य होने के कारण आप जिनदेव है।

२५ **जिनेशिता** = (जिन + ईशिता = ऋद्धि) जिनो मे पूर्णज्ञान/केवल

ज्ञान ऋद्धि धारी होने से आप जिनेशिता हैं।

२६ **जिनाधिराज** = जिनो के अधिराज अर्थात् जिनो मे सर्वोपरि हैं। अथवा जिनदेवो के भी देव होने से आप जिनाधिराज कहलाते हैं।

२७ **जिंनयो** = जिनो के पालक तीन लोक के सर्व जीवों को सुखकारक रत्नत्रयमयी धर्म बताकर जीवो का पालन करने से आप जिनयो कहलाते हैं।

२८ **जिनेशी** = जिनो मे ऐश्वर्यवान हैं। अर्थात् निज शुद्धात्मा के अनत गुणो के ऐश्वर्यवान होने से आप जिनेशी है।

२९ **जिनशासिता** = जिनो के शासक हैं। सभी जिन आपके बताये गये वीतराग मार्ग के अनुयायि होते है। अत आप जिन शासिता कहे जाते हैं।

३० **जिनाधिनाथ** = जिनो के अधिनाथ अर्थात् परमेश्वर होने से आप जिनाधिनाथ है।

३१ **जिनाधिपति** = जिनो के अधिपति है।

३२ **जिनपालक** = जिनो के पालक हैं। तीन लोक के सर्व जीवो मे समानता है। ऐसा धर्मोपदेश देकर उन्हे निज परमेश्वरत्व की ओर उन्मुख करने से आप जिन पालक है।

३३ **जिनचन्द्रो** = जिनो के चन्द्र है। आपके वचनामृत भवाताप से तपित जनो का ताप हारी होने से आप जिनचन्द्र हैं।

३४ **जिनादित्य** = जिनो मे आदित्य = सुर्य हैं। अर्थात लोक मे सर्व जीवो के अज्ञान अधकार नाशक और सु ज्ञान प्रकाशक होने से आपको जिनादित्य कहते हे।

३५ **जिनार्को** = जिनो मे अर्क = सूर्य है। अर्थात् सर्व जिनो मे रत्नत्रय की प्रचण्ड दीप्ति से दिप्तिवत है अत आप जिनार्को हैं।

३६ **जिनकुजर** = जिनो मे कुजर अर्थात श्रेष्ठ है। ऋषि, मुनि, यति और अनगार एव मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध संघ मे श्रेष्ठ होने से आप जिनकुजर हैं।

३७ **जिनेन्द्र** = (जिन + इन्द्र = चन्द्रमा) जिनो मे चन्द्रमा तुल्य हैं। अर्थात् आपके वचनो से समता रस निर्झरने लगता है। अत· जिनेन्द्र है।

३८ **जिनधौरेयो** = जिनो के धौरेयो = सचालक हैं। अथवा मोक्ष पथ पर ले जाने वाले रथ की धुरा पर आप आसीन हैं। इस कारण

आपको जिनधौरेय कहा जाता है।

३९ **जिनधूर्यो** = जिनो के धूर्यो = प्रमुख हैं। सर्व जिनो मे रत्नत्रय की एकता पूर्णता से आप प्रमुख हैं। अत आप जिनधूर्य हैं।

४० **जिनोत्तर** = जिनो मे उत्तर = उत्कृष्ट हैं।

४१ **जिनवर्यो** = जिनो मे वर्य = मुख्य है। आपने अपने सम्पूर्ण निज वैभव को प्राप्त कर लिया अत आप जिनवर्य हैं।

४२ **जिनवरो** = जिनो मे वर = सर्वश्रेष्ठ हैं।

४३ **जिनसिंहों** = जिनो मे आप सिंह के समान कर्म कारणो का भजन करने वाले होने से आपको जिनसिंह कहा जाता हैं।

४४ **जिनोद्वह** = (जिन + उद्वह) जिनो को आप निरतराय सहज स्वाभाविक आत्म सुख की ओर ले जाते हैं। अत आप जिनोद्वह हैं।

४५ **जिनऋृषभ** = जिनो मे ऋृषभ = श्रेष्ठ हैं। आपके बताये मार्ग का सर्व अनुशरण करते हैं। अथवा आप सर्व जिनो मे धर्म धुरन्धर होने से आप जिनऋृषभ कहलाते हैं।

४६ **जिनवृषभ** = जिनो मे वृषभ = बड़े होने के कारण आप जिन वृषभकहे जाते है। आप धीर, वीर, पराक्रमी, अभय है और पूर्ण ज्ञान रवि द्वारा आत्मा को आलोकित करते हैं। अत आप जिन वृषभ हैं।

४७ **जिनरत्न** = जिनो मे रत्नो के समान शोभायमान हैं। आप मे रत्नत्रय की सहज दीप्ति दैदीप्यमान होने से जिनरत्न हैं।

४८ **जिनोरस** = जिनो मे उरस = प्रधान है। तीन लोक मे आपके समान अन्य कोई भी प्रधान नही है। अत आप जिनोरस कहलाते है।

४९ **जिनेशो** = जिनो के ईश हैं। आपने द्रव्य कर्म, भाव कर्म नोकर्मो को जीत लिया है। इसलिये आप जिनेश कहलाते हैं।

५० **जिनशार्दूलो** = जिनो के शार्दूल हैं। आपने निज स्वभाव साधन द्वारा चार घातिया कर्मों का क्षय किया है। अत आपको जिनशार्दूल कहते हैं।

५१ **जिनाग्रय** = जिनो के मुखिया हैं। अर्थात् आप घातिया और अघातिया कर्मो का समूल क्षय कर लोकाग्र मे विराजमान हैं। इसलिये आपको जिनाग्रय कहते हैं।

५२ **जिनपुगव** = जिनो 'पुगव' = प्रधान हैं। अथवा इन्द्रादिक आप की पूजा करते हैं आपके ज्ञान की महिमा गाते हैं। अत आप जिन

पुगव कहलाते हैं।

५३ **जिनहंस** = जिनो मे हस = सूर्य है। आप हस की तरह चैतन्य ग्राही और भव्यो के ज्ञान कमल खिलाने को सूर्य हैं अत आप जिनहस हैं।

५४ **जिनोत्तस** = जिनो मे उत्तस = मुकुट के समान शोभायमान है। इसलिये आप जिनोत्तस है।

५५ **जिननाग** = (जिन + नागा = गणमान्य) चतुर्विध सघ मे आप गणमान्य होने से आपको जिननाग कहते है।

५६ **जिनाग्रणी** = जिनो मे अग्रणी हैं। आप स्वयबुद्ध है, मोक्षमार्ग मे अग्रणी होने से आपको जिनाग्रणी कहते है।

५७ **जिनप्रवेक** = जिनो मे प्रवेक = अत्यन्त श्रेष्ठ है। आप पच कल्याणको से सुशोभित होने से जिनप्रवेक है।

५८ **जिनग्रामणि** = जिनो मे ग्रामणि = प्रधान है। आप स्वय सिद्ध पद के धारी एव सर्व जिनो को सिद्ध समूह की ओर ले जाते है। अत आप जिनग्रामणि कहलाते है।

५९ **जिनसत्तम** = जिनो मे सत्तम = श्रेष्ठ है। सर्व कर्म कलक को धोकर अकलक हुए है एव स्व-पर तारक होने से जिनसत्तम कहलाते है।

६० **जिनप्रवर्ह** = जिनो मे प्रवर्ह = प्रवहित करने वाले। आप भव्य जीवो को श्रेष्ठतम ज्ञान गगा को बहाते हैं। अत जिनप्रवर्ह कहलाते है।

६१ **परमजिन** = पर = उत्कृष्ट म = ज्ञान लक्ष्मी धारी होने से जिनो मे उत्कृष्ट हैं अत आप को परम जिन कहते है। अथवा मोक्षादि शत्रुओ को जीत कर सर्वोत्कृष्ट ज्ञान ज्योति प्रगट की है। इसलिये आप परमजिन कहलाते है।

६२ **जिनपुरोगम** = जिनो मे पुरोगम अर्थात अग्रगामी है। जिनो मे आपके पहले स्वय मोक्ष मार्ग का साधन किया पश्चात् अन्य सभी भव्यो को सुलभ कराया है। अत आप जिन पुरोगम कहे जाते है।

६३ **जिनश्रेष्ठ** = जिनो मे आप श्रेष्ठ = उच्चपदधारी है। अर्थात् आपने अष्ट कर्मो को नष्ट कर सर्वोच्च पद प्राप्त किया है। इसलिये आप जिनश्रेष्ठ हैं।

६४ **जिनज्येष्ठ** = जिनो मे ज्येष्ठ = बड़े हैं। अर्थात् सर्व जिनो मे आप ज्ञान वृद्ध होने से आप जिनज्येष्ठ हैं।

६५ **जिनमुख्य** = जिनो मे मुख्य है। जिनो मे मुख्य पुरुषार्थ मोक्ष है। उसे आपने पा लिया है। अत आप जिन मुख्य हैं।

६६ **जिनाग्रिम** = जिनो मे अग्रिम है। मोक्ष पथ मे स्वय बुद्ध है, उस पर चलने मे स्वय अग्रगामी होने से आप को जिनग्रिम कहते है।

६७ **श्रीजिन** = श्री = ज्ञानलक्ष्मी सयुक्त जिन हैं। आप ज्ञान आदि अनत चतुष्टयात्मक लक्ष्मी सयुक्त होने से श्री जिन कहे जाते हैं।

६८ **उत्तमजिन** = जिनो मे उत्तम हैं। विषय-कषायो का सर्वथा अभाव कर ज्ञान दर्शन परिपूर्ण हो जाने से आप उत्तमजिन हैं।

६९ **जिनवृदारक** = जिनो मे वृन्दारक = श्रेष्ठ है। चार प्रकार के देवो एव सर्व जिनो मे वृन्द होने से अथवा आप जिनो मे श्रेष्ठ भी हैं और उनके देव भी है। इस कारण आप जिनवृन्दारक कहलाते है।

७० **अरिजित** = अरि = मोह शत्रु, जित = विजेता है। कर्मों को जीत कर निज सुख मे रमने से अरिजित कहे जाते है।

७१ **निर्विघ्नो** = विघ्न रहित हैं। विघ्नो का कारण अतराय कर्म है। उससे आप रहित है। अत आप निर्विघ्न है।

७२ **विरजा** = ज्ञानावरण और दर्शनावरण को रज कहते हैं। रज के विनष्ट होने से आपको विरजा कहा जाता है।

७३ **शुद्ध** = नो कर्म, द्रव्य कर्म एव भाव कर्म से रहित हैं। अत आप शुद्ध है।

७४ **निस्तमस्को** = नि = नही + तमस्क = अधकार। आप अज्ञान अधकार से रहित है। इसलिए आप को निस्तमस्क कहते है।

७५ **निरजन** = सर्व कर्म कलक से रहित होने से आप निरजन हैं।

७६ **घातिकर्मान्तक** = घातिया कर्मों का अन्त करने के कारण घातिकर्मान्तक है।

७७ **कर्ममर्मावित** = (कर्म + मर्म + आवित =) कर्म के मर्म को वेधन करने से। अथवा कर्म के रहस्य को बालो की तरह उखाड़ फेकने के कारण आपको कर्ममर्मावित कहा जाता है।

७८ **कर्महा** = कर्मो को नष्ट करने से आप कर्महा कहलाते है।

७९ **अनघ** = पाप, पतन रहित हैं। अत आप अनघ कहे जाते हैं।

८० **वीतराग** = राग वीत जाने से। अथवा अर्घ्यावतारण और असि प्रहारन मे राग रहित साम्य भावो से रहते हैं। अत आप वीतराग हैं।

८१ **अक्षुत** = क्षुधा का अभाव होने से अक्षुत है।

८२ **अद्वेष** = द्वेष का सर्वथा अभाव होने से अद्वेष हैं।

८३ **निर्मोह** = मोह रहित होने से निर्मोह है।

८४ **निर्मद** = आठ मदो से रहित होने के कारण आप निर्मद हैं।

८५ **अगद** = गद = रोग - सर्व रोगो का। अथवा जन्म मरण रूपी रोगो से रहित होने से आप अगद है।

८६ **वितृष्ण** = तृष्णा रहित है। विषयाभिलाषा और मोक्षाभिलाषा रूपी तृष्णा के अभाव से वितृष्ण कहलाते हैं।

८७ **निर्मम** = ममता रहित है। मोह का अभाव होने से स्व पर ममता रहित है। अथवा प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाण को मा कहते है। निश्चित मा प्रमाण द्वारा विश्व को जानते है अत आप निर्मम है।

८८ **असग** = सग = परिग्रह रहित है। बाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रहो का अभाव होने से आप असग है।

८९ **निर्भय** = भय रहित है। सर्व प्रकार के भयो का अभाव होने के कारण आप निर्भय कहलाते है। अथवा भा = केवलज्ञान, आप केवल ज्ञान द्वारा सर्व पदार्थो के ज्ञायक है। इसलिए आप निर्भय है।

९० **वीतविस्मय** = विस्मय रहित है। आप तीन काल तीन लोक के सर्व द्रव्यो को एक साथ जानते है। किसी भी द्रव्य के किसी भी प्रकार के परिणमन के समय आपको विस्मय नही होता है। अथवा वि = विषय, कषाय, स्मयविषय = कषायो का विष नष्ट हो जाने से आप वीत विस्मय कहे जाते है।

९१ **अस्वप्न** = निद्रा का अभाव है। ज्ञान ज्योति का अस्त होना या कर्माधीन कार्य है। आप सदा अप्रमत्त रहते है, आप की ज्ञान ज्योति सदैव आत्मा मे जागृत रहती है। अथवा अस्व प्राणियो को अप्न = अभय दान देने से आप अस्वप्न है।

९२ **नि श्रम** = श्रम रहित है। बाह्याभ्यन्तर तपो के श्रम रहित स्वरूप विश्रान्त होने से आप नि श्रम है।

९३ **अजन्मा** = आप गर्भवास रूप जन्म से रहित हो सिद्ध पद विराजते है। आपको पुन जन्म न लेने से अजन्मा कहलाते है।

९४ **निस्वेद** = स्वेद = पसेव रहित है। अथवा नि स्व = द्ररिद्रो को ई = लक्ष्मी द = दाता होने से आप निस्वेद कहलाते है।

९५ **निर्जर** = जरा रहित है।

९६ **अमर** = मरण रहित है।

९७ **अरत्यतीत** = अरति रहित है। अरुचि रहित होने से अरत्यातीत कहलाते है।

९८ **निश्चिंत** = चिंता रहित है।

९९ **निर्विषाद** = पश्चाताप रहित है। नि = नही, विष = औदयिक भाव, आद = आस्वादन औदयिक भावो के आस्वादन रहित होने से आप निर्विषाद है।

१०० **त्रिषष्ठिजित** = कर्मो की त्रेषठ प्रकृति विजयी है। घातिया की ४७ और अघातिया की १६।

: सर्वज्ञ शतक :

१०१ **सर्वज्ञ** = सर्व के ज्ञाता है। सर्वद्रव्यो को गुण और उनकी पर्यायो सहित युगपत् जानते है।

१०२ **सर्ववित** = सर्व वेत्ता है। आप सम्पूर्ण लोकालोक के वेत्ता होने से सर्ववित है।

१०३ **सर्वदर्शी** = सर्वदर्शक। आप चराचर जगत् को देखने वाले होने से सर्वदर्शी है।

१०४ **सर्वावलोकन** = सर्व जगत् का प्रत्यक्ष अवलोकन करने से आप सर्वावलोकन कहे जाते है।

१०५ **अनतविक्रम** = अनन्त पराक्रम होने से। अपने ज्ञान द्वारा सर्व पदार्थो को जानने देखने की शक्ति सम्पन्न होने से। अथवा क्रम चारित्र, आप यथाख्यात रूप अनन्त चारित्र के धारक होने से अनतविक्रम कहलाते है।

१०६ **अनतवीर्य** = वीर्य बल। आप निज शुद्धात्म सुख भोगने मे अचल है। अत आप अनतवीर्य हैं।

१०७ **अनतसुखात्म** = अनत सुख स्वरूप। निजाश्रय से परिपूर्ण सुखात्मक होने से आप अनतसुखात्म है।

१०८ **अनतसौख्य** = अनत सुख सम्पन्नता से अनत सौख्य हैं।

१०९ **विश्वज्ञ** = विश्व के ज्ञाता। सम्पूर्ण विश्व को एक समय मे एक

साथ जानने से आप विश्वज्ञ है।

११० **विश्वदृश्वा** = विश्वदर्शी = सम्पूर्ण विश्व को एक साथ देखते हैं अत आप विश्वदृश्वा है।

१११ **अखिलार्थहक** = अखिल पदार्थो के एक साथ देखने से अखिलार्थहक कहे जाते है।

११२ **न्यक्षहक** = न्यक्ष = बिना अक्ष सर्व दर्शी है। अर्थात् इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना सर्व लोकालोक को देखते हैं। अत आप न्यक्षहक है।

११३ **विश्वतश्चक्षु** = आप केवलदर्शन और केवल ज्ञान चक्षु द्वारा सर्व विश्व को देखते है। अत आप विश्वतश्चक्षु है।

११४ **विश्वचक्षु** = सम्पूर्ण विश्व ज्ञान मे एक साथ दिखाई देता है। इसलिए आप विश्वचक्षु कहलाते है।

११५ **अशेषवित** = सम्पूर्ण लोकालोक के वेत्ता होने से अशेषवित कहे जाते है।

११६ **आनद** = आप सहज आनद स्वरूप है इसलिए आनद कहलाते है।

११७ **परमानद** = उत्कृष्ट आनद कद होने से आप परमानद है।

११८ **सदानद** = सत् = समीचीन, अविनाशी आनद स्वरूप है। अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रोव्य स्वरूप आनद मय है। अथवा प्रति समय नूतन-नूतन आनद प्रगट होता रहता है। अत आप सदानद है।

११९ **सदोदय** = सदा उदय रूप है। आप की ज्ञान ज्योति सदा उदय रूप है। अथवा सदा उद् = उत्कृष्ट, अय = गमन सदा उत्कृष्ट चैतन्य स्वभाव मे गमन करते हैं। अत सदोदय कहलाते है।

१२० **नित्यानद** = हमेशा हीनाधिक रहित ज्ञान स्वरूप होने से नित्यानद है।

१२१ **महानद** = महान आनद स्वरूप है। अथवा भव्य जीव आपकी महा पूजा करके आनदित होते है। इसलिए आप महानद है।

१२२ **परानद** = पर = उत्कृष्ट आनद स्वरूप है। पर = अन्य सर्व प्राणियो को आनदोत्पादक है। अथवा सर्व आनदो मे उत्कृष्ट आनदमय हैं। इसलिए आप परानद कहे जाते हैं।

१२३ **परोदय** = पर = अन्य प्राणियो को उद् = उत्कृष्ट मोक्ष मार्ग मे

अय = गमन कराने वाले होने से आप को परोदय कहा जाता है।

१२४ **परमोज** = परम = श्रेष्ठ + ओज = उत्साही होने से परमोज कहलाते हैं।

१२५ **परतेज** = पर = उत्कृष्ट, ओज = तेजश्वी होने से परमोज है।

१२६ **परमधाम** = आपका निवास स्थान मोक्ष होने से परमधाम है।

१२७ **परमह** = पर = उत्कृष्ट मह = पूजा, ज्ञान प्रकाश, सम्माननीय, मुख्य होने से परमह कहे जाते है।

१२८ **प्रत्यग्ज्योति** = प्रत्यक् = सर्वकर्म रहित ज्ञान प्रकाशमान होने से। अथवा आप मे करोड़ सूर्यो की आभा को लज्जित करने वाला प्रभामण्डल है। इसलिए आप प्रत्यग्ज्योति कहलाते हैं।

१२९ **परज्योति** = केवल ज्ञानधारी होने से आप परज्योति है।

१३० **परब्रह्म** = पर = श्रेष्ठ = ब्रह्म = आत्मा। आप शुद्ध-बुद्ध परमात्मा होने से परब्रह्म है।

१३१ **पररह** = आप का श्रेष्ठ स्वरूप, रह = गुप्त, सूक्ष्म, अतीन्द्रिय होने से आप पररह कहे जाते है।

१३२ **प्रत्यगात्मा** = प्रत्यक् = श्रेष्ठ, पर से भिन्न है। निज स्वरूप मे एकत्व लिए आत्मा होने से आप प्रत्यगात्मा कहे जाते है।

१३३ **प्रबुद्धात्मा** = प्रकृष्ट ज्ञान स्वरुप आत्मा है। निज वीतराग विज्ञान के बल से सर्व कर्म कलक रहित आत्मा होने से प्रबुद्धात्मा है।

१३४ **महात्मा** = महान् आत्मा है। आप का ज्ञान लोकालोक प्रकाशक होने से आप महात्मा है।

१३५ **आत्ममहोदय** = आप तीर्थंकर पद को प्राप्त है। अथवा आत्मा को पूर्ण ज्ञान सूर्य का उदय हुआ है। अत आप आत्ममहोदय कहलाते हैं।

१३६ **परमात्मा** = परमेश्वर है। आपका आत्मा परम पद मोक्ष् मे आसीन होने से परमात्मा है।

१३७ **प्रशान्त** = प्रकृष्ट शान्त है। अपने कर्मों को प्रकृष्ट रूप से शात किया है। अथवा आप प्रकृष्ट शातिप्राप्त, निश्चल, सौम्य, धीर, निश्चेष्ट, अब्याबाध सुख स्वरूप होने से आप को प्रशात कहा जाता है।

१३८ **परात्मा** = अन्य सर्व आत्माओ को सिद्ध समान स्वरूप का प्रतिबोध कराने से आप परमात्मा कहे जाते है।

१३९ **आत्मनिकेतन** = आत्म निवास। आपका निवास त्रिकाली ध्रुव भगवान्

आत्मा होने से आप आत्मनिकेतन कहलाते हैं।

१४० **परमेष्ठी** = परम पद मे स्थित। अर्थात् आप सिद्ध पद मे स्थित हैं। अत आप परमेष्ठी है।

१४१ **महिष्ठात्मा** = महिष्ठ = अतिशय स्वरूप। आप चौंतीस अतिशय सहित महान् आत्म स्वरूप के धारक होने से। अथवा आप मोक्ष लक्ष्मी के स्वामी होने से। अथवा महा इष्ठ होने से आप को महिष्ठात्मा कहा जाता है।

१४२ **श्रेष्ठात्मा** = आप अत्यन्त अच्युत आनदमय आत्मा है। अथवा सर्व जिनो मे उत्तम आत्मा है। अथवा तीन लोक के जीवो के पालन करने वाले होने से आपको श्रेष्ठात्मा कहा जाता है।

१४३ **स्वात्मनिष्ठित** = निज मे स्थित। आप सकल्प, विकल्प जाल रहित निर्ममत्व निज शुद्धात्मा मे स्थित रहने से स्वात्मनिष्ठित कहलाते हैं।

१४४ **ब्रह्मनिष्ठ** = अनत ज्ञान स्वरूप निज आत्मा मे विराजमान है। अथवा सर्व भावो से भिन्न, पूर्ण, आदि अत रहित निज शुद्ध स्वभाव मे विराजमान होने से ब्रह्मनिष्ठ कहे जाते हैं।

१४५ **महानिष्ठ** = महान निष्ठावान है। परम यथाख्यात चारित्र सम्पन्न होने से महानिष्ठ है।

१४६ **निरूढात्मा** = परम्परागत शुद्ध आत्मा है। अथवा तीन भुवनो मे स्तुति के लिए प्रसिद्ध है। अत आप निरूढात्मा है।

१४७ **दृढात्मा** = अचल है। निज शुद्ध आत्म स्वरूप मे अचल दृढ रहने से आप दृढ़ात्मा कहलाते है।

१४८ **एकविद्य** = एकविद्य = एक ज्ञानधारी है। नाना प्रकार के मति आदि क्षायोपशमिक ज्ञान रहित क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान स्वरूप विद्याधारी होने से आप एकविद्य हैं।

१४९ **महाविद्य** = केवल ज्ञाना रूपी महाविद्या के स्वामी होने से आप महाविद्य कहे जाते है।

१५० **महाब्रह्मपदेश्वर** = महाब्रह्म = महान् शुद्धात्मा, पदेश्वर पद के स्वामी हैं। महा मोक्ष पद के ईश्वर होने से। अथवा गणधर आदिको से युक्त समवशरण के ईश्वर होने से। अथवा परम पूज्य परमेश्वर पद के ईश्वर होने से महाब्रह्मपदेश्वर कहलाते है।

१५१ **पंचब्रह्ममय** = शुद्धात्मा की पाँच शुद्ध अवस्थाओ से विभूषित

है। अर्थात् अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु इन पॉच आत्मा की अवस्थाओ से अलकृत होने से आप पचब्रह्ममय है।

१५२ **सार्व** = सर्व प्राणियो के हितैषी है। अथव। आपने अपना सर्वस्व निज वैभव प्राप्त कर लिया है। इसलिए आप सार्व कहलाते है।

१५३ **सर्वविद्येश्वर** = अव केवल ज्ञान विद्या के ईश्वर होने से सर्वविद्येश्वर कहलात ' '।

१५४ **स्वभू** = (स्व + भू) आप स्व मे रहते है। अथवा स्वाश्रय से परम पद प्राप्त किया है। अत आप को स्वभू कहा जाता है।

१५५ **अनतधी** (धी = ज्ञानवान) आप अनत ज्ञानधारी, अनत काल तक अनत सुख मे लीन है। अथवा दीक्षागण आप सिद्धो को नमस्कार कर दीक्षा ग्रहण करते है। इसलिए आप अनत धी कहे जाते है।

१५६ **अनतात्मा** = अनन्त चतुष्टय सयुक्त है। अथवा आप की शुद्धात्म दशा अनत है। अथवा आप अनत स्वरूप को जानते है। इसलिए आप अनतात्मा कहलाते है।

१५७ **अनत शक्ति** = आपकी शक्ति अत रहित होने से आप को अनत शक्ति कहा जाता है।

१५८ **अनतहक** = आप का ज्ञान, दर्शन अनत है अत आप अनतहक है।

१५९ **अनतधीशक्ति** = आप के ज्ञान की शक्ति अनत को जानने की है। अर्थात् अनत पदार्थो को उनके अनत गुण और उनकी अनतानत पर्यायो सहित जानने की शक्ति होने से आप अनतधीशक्ति कहलात है।

१६० **अनतचित** = आप अत रहित चैतन्य का बोध करते है। अत आप अनतचित्त है।

१६१ **अनतमुत** = मुत = आनद/सुख आप अनत अतीन्द्रिय आनद का भोग करते है। अत आप अनतमुत है।

१६२ **सदाप्रकाश** = आपकी ज्ञान ज्योति सदैव प्रकाशित रहती है। अत आपको सदाप्रकाश कहा जाता है।

१६३ **सर्वार्थसाक्षात्कारी** = मर्व + अर्थ + साक्षात्कारी + आप सर्व सुक्ष्म द्रव्यो के सर्व गुण अर उनकी सम्पूर्ण त्रिकाल वर्ती सर्व पर्यायो के प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अथवा आप सर्वार्थनिजानद प्राप्ति का साक्षात् अनुभवन करते है। अत आप सर्वार्थसाक्षात्कारी कहलाते है।

१६४ **समग्रधी** = आप सपूर्ण ज्ञेयो के ज्ञाता है। अथवा आप की बुद्धि सपूर्ण ज्ञेय प्रमाण होने से आप को समग्रधी कहते है।

१६५ **कर्मसाक्षी** = आप शुभाशुभ कर्मों के साक्षी भूत है उनके भोगता नही। अथवा कोई अच्छा या बुरा कर्म करे आप उसके मात्र साक्षी भूत होने से कर्म साक्षी कहलाते है।

१६६ **जगच्चक्षु** = आपका ज्ञान तीन लोको मे स्थित जीवो के लिए चैतन्य स्वरूप दिखाने मे नेत्र समान होने से आप जगच्चक्षु कहे जाते हैं।

१६७ **अलक्ष्यात्मा** = आप का आत्मा इन्द्रिय ज्ञान से अग्राह्य होने से आप अलक्ष्यात्मा है।

१६८ **अचलस्थिति** = शुद्धात्म मे से आप चलायमान न होने के कारण आप अचल स्थिति कहलाते है।

१६९ **निराबाध** = आप के सर्व गुण बाधा रहित परिणमन करते है। अत आप को निर्वाध कहा गया है।

१७० **अप्रतर्क्यात्मा** = आप की आत्मा क्षद्मस्थ जनो के अप्रतर्क्य/विचार/ चितवन से परे है। अतएव आप अप्रतर्क्यात्मा है।

१७१ **धर्मचक्री** = आपके आगे-आगे धर्म चक्र चलता है। अथवा आप धर्मी जनो मे चक्रवर्ती समान होने से आप को धर्मचक्री कहा जाता है।

१७२ **विदावर** = आप विद्वानो से सर्वश्रेष्ठ हैं। अथवा आप सर्वोत्कृट ज्ञानपुज एव सर्व धर्म सम्पन्न होने से विदावर कहलाते है।

१७३ **भूतात्मा** = आपने भूत = सत्यार्थ स्वरूप को प्राप्त कर लिया है। अत आप भूतात्मा है।

१७४ **सहजज्योति** = सहज केवल ज्ञान ज्योति के धारक होने से सहजज्योति कहलाते है।

१७५ **विश्वज्योति** = आप तीन लोक का यर्थाथ स्वरूप प्रकाशित करते है। अथवा अपने अनत ज्ञान, दर्शन से लोकालोक के ज्ञाता होने से आप को विश्वज्योति कहा जाता है।

१७६ **अतीन्द्रिय** = आप इन्द्रियातीत होने से अतीन्द्रिय हैं।

१७७ **केवली** = मत्यादि क्षायोपशमिक ज्ञान रहित केवल ज्ञान धारी होने से आप केवली है।

१७८ **केवलालोक** = केवल + आलोक आपका ज्ञानोद्योत इन्द्रियो

की सहायता रहित है। अथवा आप के समान ज्ञान लौकिक जनो मे आलोकित न होने से आप केवलालोक कहलाते है।

१७९ **लोकालोकविलोकन** = आपके ज्ञान मे सम्पूर्ण लोकालोक झलकता है। इसलिए आप लोकालोकविलोकन कहे जाते है।

१८० **विविक्त** = ।पृथक्। आप सासारिक एव शारीरिक विषय भोगो से पृथक् है। अथवा आप एकाकी है। अथवा कर्म मल कलक से रहित होने से। अथवा अठ्ठारह दोषो से मुक्त होने से आप को विवक्त कहते है।

१८१ **केवल** = आप (के + बल) अनत बल के धारी है। अथवा पर द्रव्य एव पर भावो से भिन्न होने से केवल है।

१८२ **अव्यक्त** = अगम्य। आप का सूक्ष्म स्वभाव इन्द्रिय और मन से अगम्य हैं, वचनो से व्यक्त नही किया जा सकता। इसलिए आप अव्यक्त है।

१८३ **शरण्य** = शरण के योग्य। भव भ्रमण से दु खित जीवो को शरण देकर उन्हे भव भ्रमण से मुक्त कराते है। अत आप शरण्य कहलाते है।

१८४ **अचित्यवैभव** = अचित्य = चितवन रहित। वैभव = यश, ज्ञान सम्पदा, महिमा, अतुलवीर्य चितवन रहित होने से आप अचित्य वैभव कहलाते है।

१८५ **विश्वभृत** = विश्व = सर्व जीवो के, भृत = पालक है। अथवा विश्व को ज्ञान मे धारण करने से। अर्थात् विश्व को ज्ञान मे अधिकृत करने से आप विश्वभृत कहलाते है।

१८६ **विश्वरूपात्मा** = विश्व = गणधरो के नायक, रूप = मुक्त, आत्मा = परमात्मा है। अथवा समुद्घात के समय आत्म प्रदेश पूरे विश्व मे फैल जाते हैं। अथवा जानने की अपेक्षा केवल ज्ञान स्वरूप आत्मा होने से विश्वात्मा है।

१८७ **विश्वात्मा** = विश्व = समानता = विश्व के समस्त जीव समान हैं कोई छोटा बड़ा नही है। इस स्वरूप की प्रतीति कराने से/अथवा विश्व के सम्पूर्ण जीव आपकी स्तुति करते है। अत आप विश्वात्मा हैं।

१८८ **विश्वतोमुख** = समवशरण मे विश्वत = चारो ओर मुख = मुह दिखाई देते है। विश्व = इन्द्रादिक, मुख = पूजा करते है। विश्वतोमुख = जल (जिसका मुख नही है।) जल की भाति आप कर्म मल

को धोने वाले, विषयो के तृष्णा शामक हैं। अथवा आपकी दिव्यध्वनि मुख से नही अपितु सर्वाग से खिरती है। इसलिए आप विश्वतोमुख कहलाते है।

१८९ **विश्वव्यापी** = आपका ज्ञान सम्पूर्ण लोकालोक का ज्ञाता है। अत आप विश्वव्यापी है।

१९० **स्वयज्योति** = निरावरण ज्ञान प्रकाश पुज होने से आप स्वयज्योति कहलाते है।

१९१ **अचित्यात्मा** = आपका आत्मस्वरूप इन्द्रियो, मन, वचन के अगोचर है। अत आप अचित्यात्मा कहलाते है।

१९२ **अमितप्रभ** = (अमित = प्रभ) असीम काति होने से। अथवा आपका यश असीम होने से अमितप्रभ कहलाते है।

१९३ **महौदार्य** = महा = महान् + औदार्य = दान शक्ति है। अर्थात् दीक्षा के समय जग को जग की निधियॉ लौटाकर निरन्तर साम्य की अविनश्वर मणियाँ देते है। अथवा समवशरण मे सर्व प्राणियो को केवल ज्ञान द्वारा अभय दान देते है। अत आप महौदार्य कहलाते है।

१९४ **महाबोधि** = आप रत्नत्रय रूप महान् बोधि धारक होने से महाबोधि है।

१९५ **महालाभ** = नव केवल लब्धि रूप महालाभ को प्राप्त होने से आप महालाभ कहलाते हैं।

१९६ **महोदय** = (महा + उदय) महान केवल ज्ञान सूर्योदय से अथवा = महस् = तेज, द = दया आप केवल ज्ञान के तेज से सयुक्त है। अथवा आपको महान् तीर्थकर प्रकृति का उदय होने से आप महोदय कहलाते है।

१९७ **महोपभोग** = आप निजानद का उपभोग निर्वाध करते है। अथवा आप छत्र, चवर सिहासन आदि के महान् उपभोग से युक्त होने के कारण आपको महोपभोग कहते है।

१९८ **सुगति** = आप मोक्ष रूप अवस्था को प्राप्त होने से सुगति कहे जाते है।

१९९ **महाभोग** = निज शुद्धात्मा का अपार भोग करने से। अथवा गधोदक, पुष्पवृष्टि आदि महान् भोग के कारण युक्त होने से। अथवा प्रति समय शरीर स्थिति के कारण भूत जो कर्म पुद्गल परमाणुओ को

ग्रहण करने रूप भोग से आप को महाभोग कहा जाता है।

२०० **महाबल** = ज्ञान दर्शन सुख भोगते बाधा नही आती है। अथवा अनतवीर्य धारी होने से महाबल हैं।

: यज्ञार्ह शतक :

२०१ **यज्ञार्हो** = यज्ञ = पूजा + अर्ह = पात्र। आप इन्द्रादिको द्वारा पूज्य होने से यज्ञार्ह है।

२०२ **भगवान्** = भग = पूर्ण ज्ञान, ज्ञान लक्ष्मी, वैराग्य, तप ऐश्वर्य, मोक्ष, सामर्थ्य, सर्वशक्तिमान, शुद्धगुण, अनैछिक आदि गुणो से वान = युक्त है। अत आप भगवान् है।

२०३ **अर्हन्** = पूज्य। आप पूज्य है। अथवा अ = अरि = मोह, रज = ज्ञानावरण, दर्शनावरण, र = रहस् = अन्तराय कर्म, हन् = नष्ट कर अरिहत पद प्राप्त किया है। अत आप अर्हन् है, अरिहत है।

२०४ **महार्ह** = मह = पूजन् के अर्ह पात्र है। अर्थात् आप के समान अन्य कोई पूज्य नही है अत आप महार्ह है।

२०५ **मधवार्चित** = मधवा = इन्द्रो से अर्चित = पूजित है। अर्थात् गर्भ आदि पॉच कल्याणको मे इन्द्रो द्वारा पूजित होने से अथवा मध = ससार का, वा = शोषण करते है। अथवा मध = जैनो द्वारा पूजित है। अत आप मधवार्चित कहलाते है।

२०६ **भूतार्थयज्ञपुरुष** = भूतार्थ = यथार्थ, वास्तव मे आप ही, यज्ञ पुरुष पूजा के योग्य पुरुष है। इसलिए आप को भूतार्थयज्ञपुरुष कहते है।

२०७ **भूतार्थक्रतपुरुष** = भूतार्थ = वास्तव मे आप, क्रत = पूजा करने योग्य पुरुष = है। इसलिए आपको भूतार्थक्रतपुरुष कहते है।

२०८ **पूज्य** = आप मुमुक्षु जनो को आत्मकल्याणार्थ सर्वोपरि पूज्य है। अत आपको पूज्य कहा जाता है।

२०९ **महारक** = श्रद्धास्पद, पूज्य, प्रभु स्वामी, पूर्ण ज्ञानवान, विशेषणो से युक्त है। अथवा विद्वानो को स्याद्वाद परीक्षा के लिए प्रेरित करते है। अत आप महारक कहलाते है।

२१० **तत्रभवान** = तत्र = वहाँ, भवान = पूज्य हैं। अर्थात् वहाँ सर्वत्र पूज्य होने से तत्रभवान नाम सार्थक है।

२११ **अत्रभवान** = अत्र = यहाँ, भवान = पूज्य है। अर्थात् यहाँ सर्वत्र पूज्य होने से अत्रभवान नाम सार्थक है।

२१२ **महान्** = श्रेष्ठ = अनत चतुष्टय के धारी होने से आप महान् कहलाते है।

२१३ **महामहार्य** = महा पूज्य होने से महामहार्य है।

२१४ **तत्रायु** = मोक्ष मे आप अनत काल तक रहते है। इसलिए आपको तत्रायु कहा जाता है।

२१५ **दीर्घायु** = मरण रहित अनतानतकाल तक सिद्धालय मे निवास करते है। इसलिए आपको दीर्घायु कहा जाता है।

२१६ **आर्घ्यवाक्** = अर्घ्य = पूज्य, वाक् = वाणी। आपकी दिव्य ध्वनि रूपी वाणी त्रिभुवन पूज्य होने से आप आर्घ्यवाक् कहलाते है।

२१७ **आराध्य** = आप आत्म कल्याणार्थियो को आराधना के योग्य होने से आराध्य कहलाते है।

२१८ **परमाराध्य** = मुनियो के आराधना के योग्य है। अथवा वैभवशाली इन्द्रादिको को आराधना के योग्य होने से परमाराध्य कहलाते है।

२१९ **पचकल्याणकपूजित** = गर्भ आदि पाँच कल्याणको के माध्यम से जगत् आपकी पूजा करता है। इसलिए पचकल्याणक पूजित कहलाते है।

२२० **द्रग्विशुद्धिगणोदग्र** = द्रग्विशुद्धि = दर्शन विशुद्धि भावना से, गण = द्वादश समूहो मे, अग्र = मुख्य होने से आप हग्विशुद्धिगणोदग्र है।

२२१ **वसुन्धरार्चितास्पद** = वसुन्धरा = रत्नो से आस्पद = माता का भवन अर्चित = पूजा जाता है। अत आप वसुन्धरार्चितास्पद कहलाते है।

२२२ **सुस्वप्नदर्शी** = गर्भ मे आने से पूर्व माता सोलह सुन्दर मनोहारी स्वप्न देखती है। इसलिए आप को सुस्वप्नदर्शी कहा जाता है।

२२३ **दिव्यौज** = आप दिव्य ओज के धारी होने से दिव्यौज कहलाते हैं।

२२४ **शचीसेवितमात्रक** = सौधर्म की इन्द्राणी द्वारा आपकी माता की गर्भ और जन्म के समय सेवा की जाती है। अतएव आप शचीसेवितमात्रक कहे जाते है।

२२५ **रत्नगर्भ** = उत्तम गर्भ को रत्नगर्भ कहते हैं। गर्भ मे आपका निवास सर्वश्रेष्ठ होने से। अथवा गर्भ मे आने से छ माह पूर्व और गर्भ मे रहने के नो माह तक रत्नवृष्टि होती है। अतएव आपको रत्नगर्भ

कहा जाता है।

२२६ **श्रीपूतगर्भ** = श्री, ह्री, धृति आदि दिक् कुमारियो के द्वारा आपकी माता का गर्भ शोधन किया जाता है। अत आपको श्रीपूतगर्भ कहते है। अथवा आपके गर्भ काल मे देवियाँ माता से ज्ञानवर्धक चर्चाए करती है इसलिए आपको पूतगर्भ कहा जाता है।

२२७ **गर्भोत्सव** = आपके गर्भागमन का उत्सव इन्द्रो द्वारा किया जाता है। इसलिए आपको गर्भोत्सव कहा जाता है।

२२८ **दिव्योपचारोपचित** = 'दिव्य' = स्वर्गीय, अलौकिक, पवित्र, 'उपचार' = पूजा / धर्मानुष्ठान, सुसस्कार, समतास्वरूप, 'उपचित' = वृद्धि सवृद्ध होने से। अथवा देवोपुनीत पूजारूप उपचार से पुष्ठिक हुए है। अतएव आप दिव्योपचारोपचित कहलाते हैं।

२२९ **पद्मभू** = गर्भ के समय आपकी माता का भवन कमलो से व्याप्त रहता है। अथवा पद्म-स्वरूप स्थिरता-आप निज शुद्ध स्वरूप स्थिर भू' होते है। अतएव आप पद्मभू कहे जाते है।

२३० **निष्कल** = आप कल = शरीर, समयावधि, काम, कवलाहार 'नि = रहित है। अथवा आपके आने के छ माह पूर्व से निष्क रत्नवृष्टि 'ल' होती है। अथवा आप गृहस्थावस्था मे एक हजार ल लडियॉ का निष्क हार पहने रहते है। इसलिए आपको निष्कल कहा जाता है।

२३१ **स्वज** = आप रागादि विकार रहित 'सु' सुन्दर 'अज' परमात्मा है। अथवा आप 'स्व' स्वय ज' = जन्म लेते है। अथवा 'स्व' = निज शुद्धात्मानुभूति से प्रत्यक्ष ज प्रगट होते है। अत आपको स्वज कहा जाता है।

२३२ **सर्वीयजन्मा** = आपका जन्म "सर्वीय" = सर्व जीवो को कल्याण कारक होने से आपको सर्वीयजन्मा कहा जाता है। अशवा पूज्य, पूजा, आराधना, भक्ति के आप ही मूल है। अत आप सर्वीयजन्मा कहे जाते है।

२३३ **पुण्याग** = आपकी स्तुति जगत् के जीवो को पुण्योपार्जन का कारण होने से अथवा आप के अग मल-मूत्र रहित होने से अथवा आपके सर्वांग पूण्य परमाणुओ के बने होने से। अथवा आप के द्वारा उपदिष्ट द्वादशाग पुण्यरूप होने से आप पुण्याग कहलाते हैं।

२३४ **भास्वान** = आप मे कोटि सूर्य प्रभा से भी अधिक प्रभा होने से भास्वान कहलाते है।

२३५ **उद्भूतदैवत** = 'उत्' = उत्कृष्ट, 'भूत' = प्राणियो के/इन्द्रादिको के आप 'दैवत' = देवता है। अथवा सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर प्रकृति का उदय होने से/अथवा आपकी भक्ति उद्भूत अनतानत भवोपार्जित 'दैव कर्मो के क्षय का कारण होने से उद्भूतदैवत कहलाते है।

२३६ **विश्वविज्ञातसभूति** = आपके सभूति = जन्म के समय तीन लोको के जीव 'वि = सुख का 'ज्ञात' = वेदन करते है/अथवा आपकी 'सभूति' समीचीन ऐश्वर्य, विभूति विश्वविज्ञात होने से आपको विश्वविज्ञातसभूति कहा जाता है।

२३७ **विश्वदेवागमाद्भुत** = आपके पॉच कल्याणको मे देवो का आगमन होने से विश्व आश्चर्यान्वित होता है/अथवा आपके द्वारा प्रणीत, पूर्वापर विरोध रहित आगम श्रवण से देव आश्चर्य चकित रह जाते है। अत आप विश्वदेवागमाद्भुत कहलाते हैं।

२३८ **शचिसृष्टप्रतिच्छन्द** = शची = परमपद, सृष्ट = स्थापक, प्रतिच्छन्द = के रूप मे। परम पद की स्थापनार्थ आपका जन्म हुआ है। अत आपको शचिसृष्टप्रतिच्छन्द कहा जाता है।

२३९ **सहस्राक्षुदृगुत्सव** = जन्म के समय इन्द्र ने आपको तीर्थकर के रूप मे एक हजार नेत्रो से देखा अथवा आपके शरीर के और तीर्थकरत्व के लक्षण इन्द्र के हजार नेत्रो को उत्सव जनक होने से आप सहस्राक्षुदृगुत्सव कहे जाते है।

२४० **नृत्यऐरावतासीन** = (नृत्य + ऐरावत + आसीन) जन्माभिषेक के समय सुमेरु पर आते जाते समय ऐरावत पर आसीन हो इन्द्र नृत्य करते है। इसलिए आप नृत्यऐरावतासीन कहलाते है।

२४१ **सर्वशक्रनमस्कृत** = सर्व 'शक्र = इन्द्र आपको नमस्कार करते है। अत आप सर्वशक्रनमस्कृत कहे जाते है।

२४२ **हर्षाकुलामराखग** = जन्माभिषेक देखने के लिए अमर गण विद्याधर, आकुलित होते है और देखकर अति आनदित होते है। इसलिए आप हर्षाकुलामराखग कहलाते है।

२४३ **चारणार्षिमतोत्सव** = आपके जन्म को चारण ऋद्धिधारी मुनि उत्सव मानते है। इसलिए आप चारणार्षिमतोत्सव कह जाते हैं।

२४४ **व्योम** = आकाश = आप आकाश की भाति निर्लेप और अनत गुणात्मक है। अत आप व्योम है।

२४५ **विष्णुपदारक्ष** = विष्णु + पद + आरक्ष। द्वादशग के पदो के आरक्षक होने से विष्णुपदारक्ष कहे जाते है।

२४६ **स्नानपीठायिताद्रिराट** = स्नान + पीठायित = आसीन 'अद्रियट = सुमेरु। जन्माभिषेक के समय आप सुमेरु शिखर पर आसीन होते है। इसलिए आप को स्नानपीठायिताद्रिराट कहा जाता है।

२४७ **तीर्थेशमन्यदुग्धाब्धि** = आपका जन्माभिषेक क्षीर सागर के जल से किये जाने के कारण वह जलाशयो का स्वामी माना जाता है। अत आप तीर्थेशमन्यदुग्धाब्धि कहलाते है।

२४८ **स्नानाम्बुस्नातवासव** = आपके जन्म का 'स्नान अभिषेक 'अम्बु = क्षीर सागर के जल से भरे स्नात् = बड़े-बड़े कलशो से 'वासव सभी इन्द्र क्रमश करते है। अत आप स्नानाम्बुस्नातवासव कहलाते है।

२४९ **गधाम्बुपूत त्रैलोक्य** = आप के सुगधित शरीर से स्पर्शित क्षीर सागर का जल ।गधित हो जाता है और उस सुगधित जल की गध से त्रैलोक्य सु।ासित हो जाता है। इसलिए आप गधाम्बुपूत त्रैलोक्य कहलाते है।

२५० **वज्रसूचीशुचिश्रवा** = (वज्र = मजबूत, सूची = मेरुदण्ड, अस्थियॉ शुचि = पवित्र, श्रवा= आकार) आपके शरीर का सहनन वज्रवृषभ नाराच का होता है/अथवा आपका ज्ञान वज्रपटल को भेदता हुआ तीन लोक को जानता है और आपका निर्मल पवित्राचार मुमुक्षु जनो को कल्याणार्थ आदर्शरूप होने से आपको वज्रसूचीशुचिश्रवा कहते है।

२५१ **कृतार्थितशचीहस्त** = जन्म के समय सर्वप्रथम शची ने आपको हाथो से उठाया। उससे शची ते [illegible] हो गये/अथवा कर्मो का क्षय कर 'शची' परम पद का हस्त आधकृ। करने से कृतार्थित हो गये। अतएव आप कृतार्थितशचीहस्त कहलाते है।

२५२ **शक्रोद्‌घोषेपटनामक** = (शक्र + उद्‌घोष + इष्ट + नामक) शक्र के द्वारा सर्वप्रथम आपके इष्ट नामो का उद्‌घोष किया जाता है। इसलिए आप शक्रोद्‌घोषेपटनामक नामक कहे जाते है।

२५३ **शक्रारब्धानदनृत्य** = आपके जन्माभिषेक के उपरान्त राज भवन

मे इन्द्र आनदोत्सव नामक नृत्य करता है। इसलिए आप शक्रारब्धानदनृत्य कहे जाते है।

२५४ **शचीविस्मापिताम्बिक** = शची = आपका बाह्याभ्यन्तर वैभव बताकर माता को विस्मय युक्त करती है। इस कारण आप शचीविस्मापिताम्बिक कहलाते है।

२५५ **इन्द्रनृत्यन्तपितृक** = जन्माभिषेक सम्पन्न कर सुरगिरि से लौट इन्द्र आपके पिता के समक्ष ताण्डव नृत्य करता है। अतएव आप इन्द्रनृत्यन्तपितृक कहलाते है।

२५६ **रैदपूर्णमनोरथ** = रैद = कुबेर द्वारा आपके मनोरथ पूर्ण किये जाते है। अत आप रैदपूर्णमनोरथ कहे जाते है।

२५७ **आज्ञार्थीन्द्रकृतासेव** = (आज्ञार्थी + इन्द्र + कृत + असेव) आज्ञाकारी इन्द्र आप की आराधना करते है। अत आपकी आज्ञार्थीन्द्रकृतासेव कहा जाता है।

२५८ **देवर्षीष्टशिवोद्यम** = दीक्षा कल्याणक के समय देव ऋषि = लौकातिक देव आपके "शिवोद्यम" मोक्ष के उद्यम की सराहना करते है भूरि-भूरि प्रशसा करते है। अतएव आपको देवर्षीशिवोद्यम कहा जाता है।

२५९ **दीक्षाक्षणक्षुब्धजगत्** = दीक्षा के समय सम्पूर्ण जगत् क्षुब्ध आनदोलित हो जाता है। इसलिए आप दीक्षाक्षणक्षुब्धजगत् कहलाते है।

२६० **भूर्भव स्व पतीडित** = भूर् = पाताल + भुवर् = मध्य लोक + स्वर् = ऊर्ध लोक + पति = स्वमियो + ईडित = पूजित है। अर्थात् आप तीन लोक के स्वामियो से पूजित होने से भूर्भव स्व पतीडित कहलाते है।

२६१ **कुबेरनिर्मितास्थान** = आपका 'स्थान सभागृह/समवशरण कुबेर द्वारा निर्मित होने से आपको कुबेरनिर्मितास्थान कहा जाता है।

२६२ **श्रीयुक्** श्री + ज्ञान सम्पदा, ऐश्वर्य, महिमा श्रेष्ठता, रत्नात्रय 'युक् युक्त, समिष्ट सुव्यवथित है। अथवा आप भव्यो को श्री' नि श्रेयस्/मोक्ष लक्ष्मी से 'युक्' युक्त कराते है/अथवा आप अनतचतुष्टय रूप बहिरग लक्ष्मी से युक्त होने से आपको श्रीयुक् कहा जाता है।

२६३ **योगीश्वरार्चित** = आप 'योगीश्वर गणधरो से अर्चित पूजित होने से आपको योगीश्वरार्चित कहा जाता है।

२६४ **ब्रह्मेड्य** = अहमिन्द्रो द्वारा आप पूजे जाते है। अत आप ब्रह्मेड्य है।

२६५ **ब्रह्मवित** = शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव करते रहने से आप ब्रह्मवित हैं।

२६६ **वेद्य** = आप अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात होने योग्य हैं। इन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात नही होते। अत आप वेद्य कहलाते हैं।

२६७ **याज्य** = यज्ञ के योग्य/अर्थात् पूज्य, आप पूजन के योग्य होने से याज्य कहलाते हैं।

२६८ **यज्ञपति** = 'यज्ञ' = पूजा आप अविशिष्ट पूजा के स्वामी होने से आप को यज्ञपति कहा जाता है।

२६९ **क्रतु** = सिद्ध, आप स्वय सिद्ध होने से क्रतु कहलाते हैं।

२७० **यज्ञाग** = "यज्ञ = पूजा" आप पूजा के मुख्य अग हैं/अर्थात् आपके बिना पूजा नही हो सकती। अत आप यज्ञाग कहे जाते हैं।

२७१ **अमृत** = मरण के अभाव से आप अनत सुख स्वरूप है। अत आप को अमृत कहा जाता है।

२७२ **यज्ञ** = आप पूज्य, पूजक और पूज त्रयात्मक रूप होते हैं। अत आप यज्ञ कहलाते हैं।

२७३ **हवि** = आप अपने 'हवि' अनत गुणो का ध्यान करते है। अत आप हवि कहलाते हो।

२७४ **स्तुत्य** = आप ही स्तुति योग्य होने से स्तुत्य कहलाते हैं।

२७५ **स्तुतीश्वर** = स्तुत्यो मे सर्वोपरि स्तुत्य होने से/अर्थात् स्तुत्यो के ईश्वर होने से स्तुतीश्वर कहलाते है।

२७६ **भाव** = आप मात्र चैतन्य भाव मय होने से भाव कहलाते हैं।

२७७ **महामहपति** = महान् पूजा के स्वामी होने से महामहपति कहलाते हैं।

२७८ **महायज्ञ** = घातिया कर्मो के क्षय के लिए अन्तर्मुहूर्त तक महायज्ञ किया। अत आपको महायज्ञ कहा जाता है।

२७९ **अग्रयाजक** = आप 'अग्र' = श्रेष्ठ 'याजक' स्वरूप मे लीन रहने वाले होने से आपको अग्रयाजक कहा जाता है।

२८० **दयायाग** = शुद्धोपयोग की रक्षा करना ही महान् याग है। अत आप दयायाग कहलाते है।

२८१ **जगत्पूज्य** = आप 'जगत्' तीन लोक मे सर्व जीवो को पूज्य होने से जगत् पूज्य कहे जाते हैं।

२८२ **पूजार्ह** = पूजा के योग्य होने से पूजार्ह कहलाते है।

२८३ **जगदार्चित** = जगत् के सर्व प्राणियो से अर्चित होने से आप जगदार्चित कहलाते है।

२८४ **देवाधिदेव** = देवो के भी देव होने से आपको देवाधिदेव कहा जाता है।

२८५ **शक्रार्च्य** = चतुर्निकाय के इन्द्रो द्वारा अर्चित होने से शक्रार्च्य कहलाते है।

२८६ **देवदेव** = देवो मे भी उत्तम देव होने से देवदेव कहलाते है।

२८७ **जगद्गुरु** = जगत् के सर्व जीवो के स्वतत्रता एव स्वावलम्बन का धर्मोपदेश देने से। अथवा जगत् के गुरु सर्वोपरि होने से आप जगद्गुरु कहलाते है।

२८८ **सहूतदेवसघाचर्य** = (सहूत + देवसघ + अर्च्य) इन्द्र के आदेश से आमत्रित चतुर्निकाय के देवो द्वारा पूजित होने से आपको सहूतदेवसघाचर्य कहा जाता है।

२८९ **पद्मयान** = बिहार काल मे देव आपके चरणो के नीचे कमलो की रचना करते है। वे कमल ऐसे प्रतीत होते है मानो भगवान् को गमन करने के लिए विमान हो। इसलिए आपको पद्मयान कहा जाता है।

२९० **जयध्वजी** = आप के बिहार मे एव समवशरण मे त्रिलोक विजय सूचक ध्वजाए फहराती है। इसलिए आपको जयध्वजी कहते हैं।

२९१ **भामडली** = आप के पृष्ठ भाग मे भा' काति का मडल वृताकार पुज रहता है, जिसे प्रभामण्डल कहते है। इसलिए आप भामण्डली कहलाते है।

२९२ **चतुषष्ठिचामर** = समवशरण मे यक्ष गण आपको चौसठ चवर ढोरते है। अत आप चतुष्ष्ठिचामर कहलाते है।

२९३ **देवदुदुभी** = आपके समवशरण मे देवगण साढे बारह कोटि की दुदुभियाँ बजाते है। अत आपको देवदुदुभी कहा जाता है।

२९४ **वागस्पृष्टासन** = आपकी दिव्य ध्वनि तालु, ओष्ठ आदि बिना हिले सर्वाग से खिरती है। इसलिए आप वागस्पृष्टासन कहलाते हैं।

२९५ **छत्रत्रयराट्** = आपके शिर पर तीन छत्र देवगण ताने रहते हैं। अत आप छत्रत्रयराट् कहलाते है।

२९६ **पुष्पवृष्टिभाक्** = आपके समवशरण से बारहयोजन तक जय ध्वनि के साथ सुगधित, सुकोमल सुन्दर पुष्पो की वृष्टि देवगण करते है। अत आप पुष्पवृष्टिभाक् कहलाते हैं।

२९७ **दिव्याशोक** = समवशरण के महामण्डप के ऊपर एक वृक्ष होता है जिसे देखने मात्र से जीवो का शोक दूर हो जाता है। अत आप दिव्य शोक कहलाते हैं।

२९८ **मानमर्दी** = समवश्सरण मे मान स्तम्भ के दर्शन करने से जीवो के मान का मर्दन हो जाता है। अतएव आपको मानमर्दी कहा जाता है।

२९९ **सगीतार्ह** = आपके समवशरण स्थित सगीतशालाओ मे देवगण सगीत से आपकी स्तुति एव नृत्य करते है। इसलिए आप सगीतार्ह कहलाते है।

३०० **अष्टमगल** = आपके समवश्सरण मे भृगार, ताल, पखा, कलश, ध्वजा, स्वस्तिक, छत्र, दर्पण और चवर ये अष्ट मगल द्रव्य सौ-सौ की सख्या मे रखे रहते है। अत आपको अष्टमगल कहा जाता है।

: तीर्थकृत शतक :

३०१ **तीर्थकृत** = तीर्थ = घाट सेतु। ससार के भव्य जीव द्वादशाग श्रुत का आशय लेकर भव समुद्र से पार होते अत द्वादशाग श्रुत तीर्थ है। आप द्वादशाग के कर्ता होने से आपको तीर्थकृत कहा जाता है।

३०२ **तीर्थसृट्** = तीर्थ + सृट्। सृज + आप। तीर्थ की रचना करते हैं, सृजन करते हैं इसलिए आप तीर्थसृट् कहलाते है।

३०३ **तीर्थकर** = आप तीर्थ को प्रसूत करने वाले है अत आप तीर्थकर कहलाते है।

३०४ **तीर्थंकर** = तीर्थंकर प्रकाश पुज आप तीर्थ को प्रकाशित करने वाले महान प्रकाश पुज है। इसलिए आपको तीर्थकर कहा जाता है।

३०५ **सुहक** = आप क्षायिक सम्यदर्शन से सुशोभित है। अत आप सुहक कहलाते है।

३०६ **तीर्थकर्त्ता** = तीर्थ के रचयिता निर्माता/सपादक होने से आपको तीर्थकर्त्ता कहा जाता है।

३०७ **तीर्थभर्ता** = आप तीर्थ के भर्ता/प्रभु/स्वामी हैं। अत आप तीर्थभर्ता कहलाते है।

३०८ **तीर्थेश** = तीर्थों के ईश स्वामी होने से आप तीर्थेश कहे जाते हैं।

३०९ **तीर्थनायक** = आप तीर्थ के नायक मार्गदर्शक/अग्रणी/स्वामी होने से तीर्थनायक कहा जाता है।

३१० **धर्मतीर्थकर** = आप मुनिधर्म और श्रावकधर्म रूप तीर्थ के कर्ता होने से धर्मतीर्थकर कहलाते हैं।

३११ **तीर्थप्रणेता** = आप तीर्थ के नेता, निर्माता, सृष्टा, मोक्षमार्ग के उद्घोषक होने से आप तीर्थप्रणेता हैं।

३१२ **तीर्थकारक** = आप तीथ के बनाने वाले एव तद्रूप परिणमन करने वाले हैं। अत आप तीर्थकारक हैं।

३१३ **तीर्थप्रवर्तक** = आप तीर्थ के प्रवर्तक प्रबोधक/स्थापित करने वाले, चालू करने वाले होने से तीर्थप्रवर्तक कहे जाते हैं।

३१४ **तीर्थवेधा** = आप तीर्थ के वेधा = सृष्टा/विद्वान पुरुष होने से तीर्थवेधा कहे जाते है।

३१५ **तीर्थविधायक** = हे प्रभु आप तीर्थ-क्रमबद्ध करने वाले, कार्यान्वित करने वाले, सोपने वाले होने से तीर्थविधायक कहलाते हैं।

३१६ **सत्यतीर्थकर** = आप सत्य तीर्थ के कर्ता होने/चलाने से सत्यतीर्थकर कहे जाते हैं।

३१७ **तीर्थसेव्य** = तीर्थ स्वरूप पुरुषो द्वारा सेव्य पूज्य होने से आप तीर्थ सेवी कहलाते है।

३१८ **तैर्थिकतारक** = तीर्थक = श्रुत मे, गुरु, जिन पूजा, सिद्ध क्षेत्र, मुनि आर्यिका, श्रावक-श्राविका, इन पात्रो मे दान मे नियुक्त हैं। उन्हे तारने वाले होने से तैर्थिकतारक कहलाते है।

३१९ **सत्यवाक्याधिप** = आप सत्य बोलने वालो मे अधिप = प्रधान हैं। अथवा सत्यवादियो की मानसिक चिन्ताओ से रक्षा करते हैं। इसलिए आप सत्य वाक्याधिप कहलाते हैं।

३२० **सत्यशासन** = आप का शासन पूर्वापर विरोध रहित सत्य कथन करता है। अत आप सत्यशासन कहलाते हैं।

३२१ **अप्रतिशासन** = आपके यथार्थ शासन के प्रतिपक्ष मे अन्य किसी का शासन नही रहता/चलता है। आप जिस अप्रतिश = सुख स्वरूप आसन मे विराजते है/अर्थात् आप जिस आसन मे विराजते हैं वह

सुख रूप है। अत: आप अप्रतिशासन कहलाते हैं।

३२२ **स्याद्वादी** = आप के वचन स्याद् पद मुद्रांकित होने से आप को स्याद्वादी कहाजाता है।

३२३ **दिव्यवागी** = आपकी वाणी निरक्षरी होने से आप दिव्यवागी कहलाते हैं।

३२४ **दिव्यध्वनि** = आपकी वाणी रूप ध्वनि सर्वांग से खिरती है जो मानुषी प्रकृति से भिन्न होती है। सर्व मनुष्य, तिर्यंच एव देवगण अपनी-अपनी भाषा मे समझ जाते है। इसलिए आप दिव्यध्वनि के नाम से पुकारे जाते हैं।

३२५ **अव्याहतार्थवाक्** = आपके वचन अव्याहत् = परस्पर विरोध रूप व्याघात रहित। अर्थ = द्रव्यगुण, पर्याय का स्वरूप कहते हैं। अत आप अव्याहतार्थवाक् कहलाते है।

३२६ **पुण्यवाक्** = आपके वचनो के श्रवण एव मनन से पुण्योपार्जन होता है/अथवा आपके वचन अहिंसामय स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। अतएव आप पुण्यवाक् कहे जाते है।

३२७ **अर्थ्यवाक्** = अर्थ्य = याचना करने पर आपकी वाणी खिरती है। अथवा अर्थ्य = द्रव्य, प्रयोजन वाली वाणी खिरती है। अथवा युक्ति-युक्त न्यायसगत वाणी खिरती है। अत आप को अर्थ्यवाक् कहा जाता हैं।

३२८ **अर्द्धमागधीयोक्ति** = आपकी वाणी यद्यपि निरक्षर मय होती है, किन्तु मगध जाती के देव उसे अक्षरात्मक करते है जिससे सर्व जीव अपनी-अपनी भाषा मे समझते हैं। अथवा जिस वाणी का अर्द्ध भाग मगध भाषा मे और अर्द्ध भाग सर्व भाषा मय परिणमन करता है। इसलिए आपको अर्धमागधीयोक्ति कहते है।

३२९ **इद्धवाक्** = इद्ध = परम अतिशय वाणी होने से इद्धवाक् कहलाते हैं।

३३० **अनेकातदिक्** = अनेक धर्म धर्मान्तक वस्तु का उपदेश देते हैं अत आप अनेकातदिक् कहलाते है।

३३१ **एकान्तध्वान्तभित्** = एकान्त रूप अज्ञान का नाश करने वाले होने से आप एकान्तध्वान्तभित् कहलाते हैं।

३३२ **दुर्णयान्तकृत्** = दुर्णय + अन्त + कृत्। आप कुनयो का अन्त

करने के कारण आपको दुर्णयान्तक कहा जाता है।

३३३ **सार्थवाक्** = सार्थक/प्रयोजनवान वचन बोलने के कारण। अथवा आप के वचनो द्वारा जीव स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त करते है। अत आप सार्थवाक् कहे जाते हैं।

३३४ **अप्रयत्नोक्ति** = आप के वचन अप्रयत्न के ही खिरते है। इसलिए आपको अप्रयत्नोक्ति कहते हैं।

३३५ **प्रतितीर्थमदघ्नवाक्** = आपकी वाणी प्रतितीर्थ = प्रतिवादियो के मद का नाश करने वाली होने से आपको प्रतितीर्थमघ्नवाक् कहते है।

३३६ **स्यात्कारध्वजवाक्** = आपकी वाणी स्यात्कार ध्वज चिन्ह से चिन्हित है। इसलिए आप स्यात्कारध्वजवाक् कहलाते है।

३३७ **ईहापेतवाक्** = आप के वचन प्रत्युपकार की कांक्षा से रहित बिना किसी उद्यम के खिरते है। इसलिए आपको इहापेतवाक् कहते है।

३३८ **अचलौष्ठवाक्** = आपकी दिव्यवाणी खिरते समय ओष्ठ अचल रहते है। अत आपको अचलौष्ठवाक् कहते है।

३३९ **अपौरुषेयवाक्शास्ता** = पुरुषो के द्वारा बोली जाने वाली वाणी से भिन्न वाणी के प्रयोक्ता है। इसलिए आपको अपौरुषेयवाक्शास्ता कहा जाता है।

३४० **रुद्धवाक्** = आपकी वाणी मुँह को खोले बिना ही प्रगट होती है। अत आप रुद्धवाक् कहलाते है।

३४१ **सप्तभगीवाक्** = आपकी वाणी सप्तभगो से युक्त होती है। इसलिए आप सप्तभगीवाक् कहलाते है।

३४२ **अवर्णगी** = आप की वाणी अक्षरात्मक वर्णरहित होने से आप अवर्णगी कहे जाते हैं।

३४३ **सर्वभाषामयगी** = आपकी वाणी सर्वभाषाओ मे समझ मे आती है। अत आप सर्वभाषामयगी कहलाते है।

३४४ **व्यक्तवर्णगी** = आपकी वाणी व्यक्तवर्णों से/स्पष्ट वर्णों से युक्त होती है। अतएव आप व्यक्तवर्णगी कहलाते है। वस्तुत आपकी वाणी निरक्षरी खिरती है किन्तु श्रोताओ को स्पष्टाक्षरो मे सुनाई देती है। इस अपेक्षा से आपको व्यक्तवर्णगी कहा जाता है।

३४५ **अमोघवाक्** = आपकी वाणी प्राणी मात्र का आत्म कल्याण करने मे सफल होती है। इसलिए आप अमोघवाक् कहलाते है।

३४६ **अक्रमवाक्** = आपकी वाणी मे सर्वतत्वो का क्रम रहित प्रकाशन होता है। अत आप अक्रमवाक् कहलाते हैं।

३४७ **अवाच्यानतवाक्** = जिसे वचनो के द्वारा नही कहा जा सकता ऐसे अनत पदार्थों के स्वरूप को आपकी वाणी कहती है। अत आप अवाच्यानतवाक् कहे जाते हैं।

३४८ **अवाक्** = आपकी दिव्य ध्वनि सर्वसाधारण जनो की भाति नही खिरती इसलिए आप अवाक् कहलाते है।

३४९ **अद्वेतगी** = आपकी वाणी एकमात्र शुद्धात्मा का शासन करने वाली है/अर्थात् निज शुद्धात्मा को प्राप्त कराने वाली होने से आपको अद्वेतगी कहते है।

३५० **सूनृतगी** = आपकी वाणी सत्य स्वरूप का ही प्रतिपादन करती है। अत आप सूनृतगी कहे जाते है।

३५१ **सत्यानुभयगी** = आपकी वाणी सत्य, सत्यार्थ और सत्य सत्यार्थ खिरती है। इसलिए आपको सत्यानुभयगी कहा जाता है।

३५२ **सुगी** = आपकी वाणी त्रिजगत् हितकर वाणी होने से आप सुगी कहलाते है।

३५३ **योजनव्यापिगी** = आपकी वाणी योजन तक बैठे श्रोताओ को सुनाई देती है। इसलिए आपको योजनव्यापिगी कहा जाता है।

३५४ **क्षीरगौरगी** = आपके गी - वचन भव्य जीवो को। 'क्षीर'। दूध के समान हितकर गौर' निर्दोष होने से आप क्षीरगौरगी कहलाते है।

३५५ **तीर्थकृत्वगी** = आप की वाणी तीर्थकृत्व' अनादि कर्म मल को प्रक्षालन करने वाली है। अत आपको तीर्थकृत्वगी कहा जाता है।

३५६ **भव्यैकश्रव्यगु** = आपके वचन भव्य जीवो के मन को प्रमोदित करने से उन्हे हित के योग्य कहलाती है। इसलिए आपको भव्यैकश्रव्यगु कहा जाता है।

३५७ **सद्गु** = आप के वचन सदैव पूर्वापर अविरुद्ध शुद्धात्मोपलब्धि के लिए खिरते है। इसलिए आप सद्गु कहलाते है।

३५८ **चित्रगु** = आपके 'चित्र स्पष्ट, रुचिकर, विभिन्न प्रकार की भाषा मय कल्याण कारक वचन होने से आप चित्रगु कहलाते है।

३५९ **परमार्थगु** = आप के वचनो द्वारा परमार्थ अर्थात् उत्कृष्ट नि श्रेयस

अर्थ का प्रतिपादन होता है। अत आप परमार्थगु कहलाते हैं।

३६० **प्रशान्तगु** = आपके वचन वीतराग पोषक होने से आप प्रशान्तगु कहलाते हैं।

३६१ **प्रश्निकगु** = प्रश्नकर्ता के प्रश्न उठते ही उसका स्वय समाधान हो जाता है। इसलिए आप प्रश्निकगु कहलाते हैं।

३६२ **सुगु** = आपके वचन सशय विभ्रम विमोह अनध्यवसाय का समूल नाश कर आत्म प्रकाशक होते हैं। अत आप सुगु कहलाते है।

३६३ **नियतकालगु** = आपके वचन नियत हित-मित, अनवरत, निश्चित समय छ छ घडी चार वार खिरते है। अत आपको नियतकालगु कहते हैं।

३६४ **सुश्रुति** = आपके वचन 'श्रुति' सुनने मे, तत्व प्रतिपादन मे, ध्वनि से या द्वादशाग के ज्ञानरूप होने से 'सु' उत्तम है। अथवा आपकी 'श्रुति' तपश्चर्या/स्वरूप विश्रान्ति 'सु' उत्तम होने से आपको सुश्रुति कहा जाता है।

३६५ **सुश्रुत** = आपका श्रुत पूर्वापर अविरोध सहित होने से आप सुश्रुत कहलाते हैं।

३६६ **यज्यश्रुति** = आप की 'श्रुति' द्वादशश्रुत, स्वरूप विश्रान्ति गणधरो द्वारा भी याज्य/पूज्य है। अत आप याज्यश्रुति कहलाते हैं।

३६७ **सुश्रुत** = आपके वचन आत्म कल्याणार्थ श्रवण की जाती है। अत आप सुश्रुत कहलाते है।

३६८ **महाश्रुति** = आपकी वाणी द्वारा महान् अर्थों को सुना समझा जाता है। अत आपको महाश्रुति कहा जाता है।

३६९ **धर्मश्रुति** = आपकी वाणी मे वस्तुस्वभावरूप धर्म का प्रकाशन होता है। अतएव आप धर्मश्रुति कहलाते है।

३७० **श्रुतिपति** = आप "श्रुति" द्वादशाग के पति स्वामी होने से श्रुतिपति कहलाते हैं।

३७१ **श्रुत्युद्धर्त्ता** = 'श्रुति उद्धर्त्ता' श्रुत को अवतरित करने से आप श्रुत्युद्धर्त्ता कहलाते हैं।

३७२ **ध्रुवश्रुति** = आपका द्वादशाग रूप श्रुत अनादि अनत एकरूप होने से आप ध्रुवश्रुति कहलाते हैं।

३७३ **निर्वाणमार्गदिक्** = निर्वाण के मार्ग का दिग्दर्शन कराने से आप

निर्वाणमार्गदिक् कहलाते है।

३७४ **मार्गदेशक** = मोक्ष मार्ग का उपदेश देने से मार्गदेशक कहे जाते हैं।

३७५ **सर्वमार्गदिक्** = सर्व जीवो को सर्व सुखकर मार्ग दर्शक होने से सर्वमार्गदिक् कहलाते हैं।

३७६ **सारस्वतपथ** = सरस्वती के मार्ग स्वरूप है/अथवा आप ज्ञान की सार शुद्धता के पथ स्वरूप होने से आप को सारस्वतपथ कहा जाता है।

३७७ **तीर्थपरमोत्तमतीर्थकृत** = तीर्थों मे परम उत्तम निर्वाण तीर्थ के कर्ता होने से आप तीर्थपरमोत्तमतीर्थकृत कहलाते है।

३७८ **देष्टा** = आप भव्य जीवो को अपने समान स्वय बन जाने का उपदेश देते है। अतएव आप देष्टा कहलाते है।

३७९ **वाग्मीश्वर** = वचन बोलने मे कुशल गणधरादिको के आप ईश्वर होने से वाग्मीश्वर कहलाते हैं।

३८० **धर्मशासक** = आप रत्नत्रय स्वरूप, उत्तमक्षमा आदि दश लक्षण स्वरूप और वस्तुस्वरूप धर्म का उपदेश देने से आपको धर्मशासक कहा जाता है।

३८१ **धर्मदेशक** = आत्म धर्म का उपदेश करने से धर्मदेशक कहलाते है।

३८२ **वागीश्वर** = वाक् + ईश्वर = वाणी के ईश्वर होने से वागीश्वर कहलाते हैं।

३८३ **त्रयीनाथ** = तीन के स्वामी सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के स्वामी। अथवा तीनो लोको के स्वामी होने से आप त्रयीनाथ कहलाते हैं।

३८४ **त्रीभगीश** = उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप तीन भगो के। अथवा सत्व उदय उदीरणा के 'ईश' निरूपक होने से आप त्रिभगीश कहे जाते है।

३८५ **गिरापति** = आप गिरा = वाणी, भाषा, आवाज, बोलना के पति = स्वामी है। अत गिरापति कहलाते है।

३८६ **सिद्धाग्य** = सिद्ध + आज्ञा आपकी आज्ञा सिद्ध है/प्रमाणित है/ अथवा आपकी आज्ञा से सिद्ध पद प्रगट होता है। अत आप सिद्धाग्य कहलाते हैं।

३८७ **सिद्धवाक्** = वस्तु का जैसा परिणमन होता है, हो रहा है और होवेगा आप वही कहते हैं। इसलिए आप सिद्धवाक् कहलाते हैं।

३८८ **आज्ञासिद्ध** = आपकी आज्ञा सिद्ध स्वभाव की प्रतिपादक होने से आप आज्ञासिद्ध कहे जाते हैं।

३८९ **सिद्धैकशासन** = सर्व शासनो मे आपका शासन सिद्ध है। अथवा आपके शासन से ही जीव सिद्ध पद को प्रगट करते हैं। इसलिए आप सिद्धैकशासन कहलाते है।

३९० **जगत्प्रसिद्धसिद्धात** तीन लोक मे यह बात स्वय सिद्ध है कि आपका सिद्धात तीन लोक मे आत्म हित के लिए प्रसिद्ध है।

३९१ **सिद्धमत्र** = आपका 'मत्र' आध्यात्मिक ज्ञान सिद्ध है। इसलिए आप सिद्ध मत्र कहे जाते हैं।

३९२ **सुसिद्धवाक्** = आकी वाणी भले प्रकार से सिद्ध है अत आप सिद्धवाक् कहलाते हैं।

३९३ **शुचिश्रवा** = आपके वचन 'शुचि' पवित्र 'श्रवस्' कीर्ति/ख्याति को प्राप्त है/अथवा आपके वचन 'श्रवस कर्णो को पवित्र करने वाले होने से आपको शुचिश्रवा कहा जाता है।

३९४ **निरुक्तोक्ति** = न्याय सगत युक्तियो को 'निरुक्त' अभिहित, अभिव्यक्त, परिभाषित करने से आपको निरुक्तोक्ति कहा जाता है।

३९५ **तंत्रक्रत** = 'तत्र' शास्त्र/वीतराग विज्ञान के 'क्रत' कर्ता होने से आप तत्रक्रत कहे जाते है।

३९६ **न्यायशास्त्रक्रत** = आप निष्पक्ष् और पूर्वापर विरोध रहित शास्त्र के कर्ता होने से न्यायशास्त्रक्रत कहलाते हैं।

३९७ **महिष्ठवाक्** = आपका 'वाक्' वाणी 'महिष्ठ' पूज्य होने से महिष्ठवाक् कहलाते हैं।

३९८ **महानाद** महान नाद रूप दिव्य ध्वनि खिरने से आप महानाद कहे जाते हैं।

३९९ **कवीन्द्र** = आप 'कवि गणधरो के भी इन्द्र होने से आप कवीन्द्र कहलाते हैं।

४०० **दुन्दुभीस्वन** = आपके 'स्वन' शब्दो का उच्चारण दुदुभी के समान होता है। अथवा आपके सामने देव दुदुभी की ध्वनि करते हैं। इसलिए आपको दुदुभीस्वन कहा जाता है।

: नाथ शतक :

४०१ **नाथ** = मुनियो को मोक्ष प्राप्ति के सर्वोत्तम आदर्श प्रभु होने से आप को नाथ कहा जाता है।

४०२ **पति** = आप तीन लोक मे प्रधान होने से/अथवा सर्वजगत् के प्राणियो को विषय कषायो से मुक्त कर उन्हे शुद्धात्मा मे स्थिर करने वाले होने से आप पति कहलाते है।

४०३ **परिवृढ** = आप तीन भुवन के मुखिया होने से परिवृढ कहलाते हैं।

४०४ **स्वामी** = आप निज शुद्धात्मा के एकायत्त अधिकार रखने से/स्वामी अथवा आप विद्वानो मे सर्वोच्च कोटि के धार्मिक विद्वान पुरुष होने से आप स्वामी कहलाते है।

४०५ **भर्ता** = जगत् के जीवो का सर्व सद्गुण सम्पन्न नेता होने से आप भर्ता कहलाते हैं।

४०६ **विभु** = आप शक्तिशाली, सर्वोपरि, आत्मसयमी, धीर जितेन्द्रिय होने से विभु कहलाते है। अथवा 'विभु मगल, सत्ता, निवास, सम्पत्ति आदि सर्वार्थ विभिन्न-विभिन्न विवक्षाओ से पाये जाते हैं। अत आप को विभु कहा जाता है।

४०७ **प्रभु** = आप सर्व सामर्थ्य सम्पन्न होने से प्रभु कहलाते हैं।

४०८ **ईश्वर** = (ईश् + वर) आप श्रेष्ठ स्वामी होने से ईश्वर कहे जाते है। अथवा सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न होने से ईश्वर कहलाते है।

४०९ **अधीश्वर** = आप प्रमुख ईश्वर होने से/अथवा 'अधी' तिर्यञ्चो को भी आप का सम्बोधन होता है। अत आप अधीश्वर कहलाते हैं।

४१० **अधीश** = अधीश कुबुद्धियो को भी आप का दर्शन सुबुद्धि कारक होने से आप को अधीश कहा जाता है।

४११ **अधीशवान** = अधी = अन्यथा श्रद्धानी जीव आपके समवाशरण मे आप का दर्शन कर आपको अपना ईशान अर्थात् महान् स्वामी मान लेते है। अत आप अधीवाशन कहलाते हैं।

४१२ **अधीशिता** = आपकी ईशता = स्वामीपना महान् होने से आप अधीशिता कहलाते है।

४१३ **ईशिता** = अणिमा आदि ऋद्धियो से युक्त होने से ईशिता कहे

जाते हैं।

४१४ **ईश** = इन्द्रियो का निग्रह और रत्नत्रय के अनुग्रह से आप ईश कहलाते हैं।

४१५ **अधिपति** = आप अधिक समर्थ पति होने से अधिपति कहलाते है।

४१६ **ईशान** = आप अहमिंद्रो के स्वामी होने से। अथव 'आन' उपयोग को स्वरूप मे ले जाने वालो मे प्रधान होने से ईशान कहलाते है।

४१७ **इन** = योगियो को ध्यान के योग्य होने से आप इन कहलाते है।

४१८ **इन्द्र** = आप शिव मार्ग मे क्रीड़ा करते हुए परम पद को प्राप्त होते है एव आप की आज्ञा का उल्लघन नही होता। अत आप इन्द्र कहलाते हैं।

४१९ **अधिप** = आप अधिप = निजानन्द रस का पान करने वाले होने से अधिप कहलाते हैं।

४२० **अधिभू** = आप 'अधिभू' = नायक, आप आत्म हित मार्ग के नायक हैं। अथवा (अधि + भू) 'भू धातु मगल, होना, उदय, सदा विद्यमान, स्थिर सम्पत्ति आदि सभी अर्थ आप मे घटित होते हैं। इसलिए आपको अधिभू कहा जाता है।

४२१ **महेश्वर** = महान् ईश्वर होने से महेश्वर कहलाते है।

४२२ **महेशान** = महापुरुषो के ईशान होने से महेशान कहलाते हैं।

४२३ **महेश** = 'मह' पूजा के ईश होने से/अथवा 'महा' रत्नत्रयधारियो के ईश होने से महेश कहलाते हैं।

४२४ **परमेशिता** = 'पर' उत्कृष्ट और 'मा' लक्ष्मी के 'ईशिता' = स्वामी होने से परमेशिता कहलाते हैं।

४२५ **अधिदेव** = कल्पवासी देवो के भी देव होने से अधिदेव कहलाते हैं।

४२६ **महादेव** = महान् देव होने से महादेव कहलाते है।

४२७ **देव** = आप दिव्य पुरुष है। अत आप देव कहलाते हैं।

४२८. त्रिभुवनेश्वर तीन भुवनो के ईश्वर होने से त्रिभुनेश्वर कहलाते हैं।

४२९ **विश्वेश** = विश्व के ईश होने से आप विश्वेश कहलाते हैं।

४३० **विश्वेभूतेष** = विश्व के सर्व जीवो के ईश होने से विश्वभूतेष कहलाते

हैं।

४३१ **विश्वेट्** = विश्व के राजा होने से विश्वेट् कहलाते हैं।

४३२ **विश्वेश्वर** = विश्व के ईश्वर होने से विश्वेश्वर कहलाते हैं।

४३३ **अधिराट्** = स्वय चौतीस अतिशियो से शोभित एव राजाओ के राजा होने से आप अधिराट् कहलाते हैं।

४३४ **लोकेश्वर** = तीन लोक के ईश्वर होने से लोकेश्वर कहलाते हैं।

४३५ **लोकपति** = आपके चरणो मे सम्पूर्ण लोक सम्पूर्ण रूप से समर्पित होने से लोकपति कहे जाते हैं।

४३६ **लोकनाथ** = लोक के स्वामी हैं। अत आप लोकनाथ कहलाते हैं।

४३७ **जगत्पति** = जगत् के पति होने से जगत्पति कहे जाते हैं।

४३८ **त्रिलोकनाथ** = तीन लोको के नाथ होने से त्रिलोकनाथ कहलाते है।

४३९ **लोकेश** = लोक के ईश होने से आप लोकेश कहलाते है।

४४० **जगन्नाथ** = जगत् के नाथ होने से जगन्नाथ कहे जाते हैं।

४४१ **जगत्प्रभु** = जगत् के प्रभु होने से आप जगत्प्रभु कहलाते हैं।

४४२ **पिता** = आप सर्व प्राणियो को पालने वाले होने से पिता कहलाते है। अथवा जीवो को शिव पद मे स्थापित करते है। अत आप पिता कहलाते है।

४४३ **पर** = उच्चतम, पूज्यतम, अतिम तन धारी, मोक्ष, परमात्मा, चरम चारित्र सम्पन्न होने से पर कहलाते है।

४४४ **परतर** = तीर्थंकर पद धारी सिद्ध होने से परतर कहलाते हैं।

४४५ **जेता** = कर्म शत्रुओ को जीतने से जेता कहलाते हैं।

४४६ **जिष्णु** = सदा जितेन्द्रिय होने के कारण जिष्णु कहलाते हैं।

४४७ **अनीश्वर** = आप का कोई ईश्वर नही है। अत आप अनीश्वर है।

४४८ **कर्ता** = आप अपने शुद्ध भावो के कर्ता होने से कर्ता कहलाते हैं।

४४९ **प्रभुत्व** = इन्द्रादिको के प्रभुत्व सम्पन्न होने से आप प्रभुत्व कहलाते है।

४५० **भ्राजिष्णु** = कोटि सूर्यों की दीप्ति से भी अधिक दीप्ति धारक होने से भ्राजिष्णु कहलाते हैं।

४५१ **प्रभविष्णु** = अनत बलशाली होने से प्रभविष्णु कहलाते हैं।

४५२ **स्वयप्रभु** = असहाय हो स्वय ही पूर्ण समर्थ होने से आप को स्वयप्रभु कहा जाता है।

४५३ **लोकजित** = लोक को जीतने से लोकजित कहलाते हैं।

४५४ **विश्वजित** = विश्व को जीतने से विश्वजित कहे जाते है।

४५५ **विश्वविजेता** = विश्व पर विजय प्राप्त करने से विश्वविजेता कहलाते है।

४५६ **विश्वजित्वर** = 'विश्व' जन्म-मरण को जीतने से विश्वजित्वर कहलाते है।

४५७ **जगज्जेता** = तीन लोक की सम्पदा समवशरण के रूप मे आपके चरणो का आश्रय पा शोभायमान होती है और आप उससे अलिप्त रहते हैं। इसलिए आपको जगज्जेता कहा जाता है।

४५८ **जगज्जैत्र** = 'जगत् = मोह रूपी जगत् को जीतने से जगज्जैत्र कहलाते है।

४५९ **जगज्जिष्णु** = जगत् कल्याण हेतु कर्म शत्रुओ को जीतने एव भव्यो को आनन्ददायक होने से जगज्जिष्णु कहलाते है।

४६० **जगज्जयी** = 'जगत्' मिथ्या अधकार को जीतने से और सम्यक् प्रकाशक होने से आप जगज्जयी कहलाते है।

४६१ **अग्रणी** = आप भव्य जनो को लोकाग्र मे स्थापित करते है। अथवा आप सिद्धालय मे निवास करते है। अत आप अग्रणी कहे जाते है।

४६२ **ग्रामणी** = 'ग्राम' समूह, आप भव्य जीवो को सिद्ध समूह मे ले जाते है। इसलिए ग्रामणी कहलाते है।

४६३ **नेता** = जीवो को रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करते है। अत नेता कहलाते है।

४६४ **भूर्भुवस्वरधीश्वर** = 'भूर्' अधोलोक, 'भुव्' मध्यलोक, 'स्वर' ऊर्ध्वलोक के अधीश्वर हैं। अत आप भूर्भुवस्वरधीश्वर कहलाते है।

४६५ **धर्मनायक** = अहिसा धर्म के नायक होने से धर्मनायक कहलाते हैं।

४६६ **ऋद्धीश** = ऋद्धि धारी मुनियो के आप ईश हैं। अत आपको ऋद्धीश कहा जाता है।

४६७ **भूतनाथ** = 'भूत' प्राणियो के स्वामी होने से आप भूतनाथ कहलाते हैं।

४६८ **भूतभृत्** = प्राणियो के पालक होने से आपको भूतभृत् कहा जाता है।

४६९ **गति** = ज्ञान, अर्तिमथन, पीड़ामथन। आप ज्ञान स्वरूप, पीड़ानाशक होने से आप गति कहलाते हैं।

४७० **पाता** = जगत् के जीवो की रक्षा करते हैं अत आप पाता कहलाते है।

४७१ **वृष** = बरसना, सर्वोपरि शक्ति रखना। आप के द्वारा धर्मामृत की वर्षा होती है। अथवा आप सर्वोपरि शक्ति सम्पन्न होने से वृष कहलाते हैं।

४७२ **वर्य** = मोक्ष मार्गियो मे आप सर्वश्रेष्ठ होने से वर्य कहलाते हैं।

४७३ **मत्रकृत** = बीज रूप शास्त्रो के कर्ता होने से आप मत्रकृत कहलाते हैं।

४७४ **शुभलक्षण** = श्री वृक्ष शख चक्र आदि शुभ लक्षणो के धारक होने से आप शुभ लक्षण कहलाते हैं।

४७५ **लोकाध्यक्ष** = 'अध्यक्ष - प्रत्यक्षीभूत, स्वामी, विशिष्ट ज्ञान रूप नेत्र के धारक होने से लोकाध्यक्ष कहलाते है।

४७६ **दुराधर्ष** = 'दुर्' दुखो के द्वारा 'अधर्ष पर भावो को प्राप्त नही होते। अत आप दुराधर्ष कहलाते है।

४७७ **भव्यबधु** = भव्य जीवो के बधु होने से आपको भव्यबधु कहा जाता है।

४७८ **निरुत्सुक** = आप कृत कृत्य होने से आपको कोई कार्य करने की उत्सुकता नही है। इसलिए निरुत्सुक कहलाते है।

४७९ **धीर** = स्थिर साम्य, त्रिकालज्ञ, चारित्रवान, आदि सर्व विशेषण आप मे हैं। अथवा अपने चैतन्य स्वभाव मे 'धी' बुद्धि रमाते हैं। अथवा 'धीय राति मुमुक्षुओ को मोक्ष प्राप्ति की बुद्धि देते हैं।

४८० **जगद्धित** = जगत् हितकारी होने से आपको जगद्धित कहा जाता है।

४८१ **अजय्य** = आप किसी से भी जीते नही जा सकते। अत आप अजय्य हैं।

४८२ **त्रिजगत्परमेश्वर** = आप तीन जगतो के परम ईश्वर हैं। अत आप त्रिजगतपरमेश्वर कहलाते हैं।

४८३ **विश्वासी** = आप पूरे सपूर्ण विश्व मे 'आस' वास करते हैं। अत

आप विश्वासी कहलाते हैं।

४८४ **सर्वलोकेश** = सर्व लोक के ईश होने से आप सर्वलोकेश कहलाते हैं।

४८५ **विभव** = 'वि + भव' आपका भव रूप ससार विगत हो गया है। अथवा आपने विशिष्ट भव लिया जिसके पश्चात् पुन भव धारण नही करना अत आपको विभव कहा जाता है।

४८६ **भुवनेश्वर** = तीन भुवन के ईश्वर होने से भुवनेश्वर कहलाते हैं।

४८७ **त्रिजगद्वल्लभ** = तीन जगत् वे जीवो के प्रिय स्वामी होने से आप त्रिजगद्वल्लभ कहे जाते है।

४८८ **तुग** = आप मोक्षार्थियो को उन्नत/मोक्ष रूप फल देते हैं। अत आप तुग कहलाते है।

४८९ **त्रिजगन्मगलोदय** = तीन जगत् के जीवो को मगल हेतु आपके ज्ञान का उदय हुआ है। अत आपको त्रिजगन्मगलोदय कहा जाता है।

४९० **धर्मचक्रायुध** = धर्म चक्र रूप आयुध आगे-आगे चलने से आप धर्मचक्रायुध कहलाते है।

४९१ **सद्योजात** = सद्य = ज्ञान, 'जात' = जन्म से ही तीन ज्ञान धारी होते हैं। अत आप सद्योजात कहलाते है।

४९२ **त्रैलोक्यमगल** = तीन लोक के म = पापो को गलाते है। अथवा 'मग' सुख को 'ला = लाते है। इसलिए त्रैलोक्यमगल कहलाते है।

४९३ **वरद** = (वर + द) मोक्ष देने के कारण आपको वरद कहा जाता है।

४९४ **अप्रतिघ** = 'प्रतिघ' = विरोध, सघर्ष, कषाय रहित होने से अप्रतिघ कहलाते हैं।

४९५ **अछेद्य** = बाह्याभ्यन्तर शत्रुओ द्वारा छेदे नही जा सकते। अत आप अछेद्य कहे जाते है।

४९६ **दृढीयान** = आप स्वरूप मे अति स्थिर होने से दृढीयान कहलाते है।

४९७ **अभयकर** = आप सभी जीवो को अभय करते है। अत आप अभयकर कहलाते है।

४९९ **निरौपम्य** = आपकी उपमा के योग्य जगत् मे कोई अन्य नही है। अत आप निरौपम्य कहलाते हैं।

५०० **धर्मसाम्राज्यनायक** = धर्म रूपी साम्राज्य के नायक होने से आपको धर्मसाम्राज्यनायक कहा जाता है।

: योगि शतक :

५०१ **योगी** = आप चैतन्य स्वभाव से जुड़े होने से मुक्त होने की पद्धति/उपाय बताने से/भव रोग का उपचार करने से/गभीर स्वरूप चिंतवन करने से आपको योगी कहते है।

५०२ **व्यक्तनिर्वेद** = ससार शरीर भोगो से विरक्तता मुख कमल से ही व्यक्त हो रही है अत आप व्यक्तनिर्वेद कहलाते हैं।

५०३ **साम्यारोहणतत्पर** = 'साम्य' = शुद्धोपयोग मे/चित् स्वभाव मे आरोहण मे तत्पर होने से/अथवा निज शुद्ध स्वभाव मे तन्मय होने से साम्यारोहणतत्पर कहलाते है।

५०४ **सामायिकी** = जो 'सामाय' 'सा' लक्ष्मी को 'माय माया रूप मानते है। उन्हे सामाय कहते है। उनका समुदाय आपके साथ होने से आपको सामायिकी कहते है।

५०५ **सामायिक** = आपके भावो मे ससारी और सिद्ध समान होने से आप सामायिक कहलाते है।

५०६ **नि प्रमाद** = प्रमाद रहित होने नि प्रमाद कहलाते है।

५०७ **अप्रतिक्रम** = आप मे सर्व दोषो के अभाव से प्रतिक्रमण का अभाव है। अत आप अप्रतिक्रम कहलाते है/अथवा आपका ज्ञान सर्व पदार्थों को अक्रम जानता है। अत आप अप्रतिक्रम कहलाते है।

५०८ **यम** = आप मे आत्म नियत्रण, धर्म साधना आदि रूप सर्व विशेषण जीवन पर्यन्त होने से आपको यम कहा जाता है।

५०९ **प्रधान** = नियम = आपके आत्म नियमन रूप नियम/अर्थात् पाँच महाव्रत पाँच समिति तीन गुप्ति अट्ठाईस मूल गुणो मे प्रधान होने से आप प्रधान नियम कहलाते हैं।

५१० **स्वभ्यस्तपरमासन** = भोगी गई 'पर' श्रेष्ठ 'मा' लक्ष्मी को दीक्षा क्षण पूर्ण रूप से 'आसन' छोड़ देते है। इसलिए आप स्वभ्यस्तपरमासन कहलाते है।

५११ **प्राणायामचण** = प्राण + आयाम + चण = दश प्रकार के प्राणो

का 'आयाम' निग्रह करने मे आप 'चण' विख्यात हैं। अत आप को प्राणायामचण कहा जाता है।

५१२ **सिद्धप्रत्याहार** = इद्रियो के 'प्रत्याहार' दमन करने मे आप सफल होने से सिद्धप्रत्याहार कहलाते है।

५१३ **जितेन्द्रिय** = पॉच इन्द्रियो और उनके विषयो को जीतने से आप जितेन्द्रिय कहलाते है।

५१४ **धारणाधीश्वर** = धारणा + अधीश्वर। सभालने थामने सहारा देने इष्ट स्थान मे सुरक्षित रखना, मन मे धारण करने की शक्ति, निर्विकल्पता, धैर्य आदि विशेषणो से सयुक्त मुनियो के भी आप अधीश्वर है। अत आप धारणाधीश्वर कहलाते है।

५१५ **धर्मध्याननिष्ठ** = चार प्रकार के धर्म ध्यानो से परे शुक्ल ध्यान मे स्थित होने से आप धर्मध्याननिष्ठ कहे जाते है।

५१६ **समाधिराट्** = समरसी भाव समाधि आप समरसी भावो मे लीन योगियो के भी आप अधीराट् है। इसलिए आपको समाधिराट् कहा जाता है।

५१७ **स्फुरत्समरसीभाव** = आपके सर्वांगो से समरसी भाव स्फुरायमान होने से आप को स्फुरत्समरसीभाव कहा जाता है।

५१८ **एकी** = सर्व पर भावो से मुक्त एक चैतन्य स्वरूप होने से अथवा आपके मत मे सर्व जीव एक चैतन्य के धारक होने से आपको एकी कहा जाता है।

५१९ **करणनायक** = 'करण धार्मिक अनुष्ठान के नायक होने से करणनायक कहलाते है।

५२० **निर्ग्रन्थनाथ** = बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित नग्न दिगम्बर मुनियो मे पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इन पॉच प्रकार के निग्रन्थ साधुओ के आप नाथ है। अतएव आपको निर्ग्रन्थनाथ कहा जाता है।

५२१ **योगीन्द्र** = योगीयो मे आप 'इन्द्र प्रधान होने से आप योगीन्द्र कहलाते है।

५२२ **ऋषि** = केवल ज्ञान ऋद्धि धारी होने से आप ऋषि कहलाते है। अथवा सर्व क्लेशो का आप मे 'रेषण निरोध होने से ऋषि कहलाते है।

५२३ **साधु** = रत्नत्रय की साधना करने साधु कहलाते हैं।

५२४ **यति** = इन्द्रियो पर नियत्रण/स्वरूप विश्रान्त होने से आप यति कहलाते हैं।

५२५ **मुनि** = 'मन धातु जानने के अर्थ मे है। आप लोकालोक को जानते है। अत मुनि कहलाते है।

५२६ **महर्षि** = ऋद्धि धारी मुनीश्वरो मे आप महान होने से महर्षि कहलाते हो।

५२७ **साधुधौरेय** = आप साधुओ मे धौरेय' अग्रेसर होने से आप साधुधौरेय कहलाते है।

५२८ **यतिनाथ** = कषायो के नष्ट करने वालो को यति कहते है। उनके आप नाथ है। अत आप यतिनाथ कहलाते है।

५२९ **मुनीश्वर** = मुनियो के ईश्वर होने से आप मुनीश्वर कहलाते है।

५३० **महामुनि** = गणधर आदि मुनियो मे महान होने से महामुनि कहलाते है।

५३१ **महामौनी** = औष्ठ, तालु हिलाये बिना सर्वांग से उपदेश होता है। इसलिए आप महामौनी कहलाते है।

५३२ **महाध्यानी** = शुक्ल ध्यान रूप महाध्यान के ध्याता होने के कारण आपको महाध्यानी कहा जाता है।

५३३ **महाव्रती** = महा सर्वदेश व्रतो के धारी होने से आप महाव्रती कहलाते है।

५३४ **महाक्षम** = उत्तम क्षमा धारी होने से महाक्षम कहलाते है।

५३५ **महाशील** = शील के १८००० भेदो को धारण करने से महाशील कहलाते है।

५३६ **महाशान्त** = मोह क्षोभ उत्कृष्ट रूप से शान्त होने से अथवा 'श सुख अन्त धर्म। आपका आत्मा महा सुख रूप धर्म मय होने से/अथवा परिग्रह की तृष्णा रूपी महा आशा का अन्त करने से आप महाशान्त कहलाते है।

५३७ **महादय** = आपने दम प्रचण्ड परिग्रह और घोर उपसर्गो को साम्य भावो से जय करने के कारण/अथवा त्रैलोक के प्रणियो पर 'द' दया, पालन, दान आदि अनेक अर्थों को धारण करने से महादय कहलाते है।

५३८ **निर्लेप** = आप कर्म कलक के लेप रहित होने से निर्लेप कहलाते हैं।

५३९. **निभ्रमस्वान्तो** = आपका 'स्वान्त' चित्त भ्रम रहित होने से निभ्रम कहलाते हैं।

५४० **धर्माध्यक्ष** = मुनि और श्रावक धर्म के धारको मे आप प्रधान होने से धर्माध्यक्ष कहलाते हैं।

५४१ **दयाध्वज** = दया रूपी ध्वज के धारण करने से/अथवा 'दयाध्व' दयामयी योगीयो के हृदय मे 'ज' जन्म/प्रत्यक्ष होते हैं। अत आप दयाध्वज कहे जाते हैं।

५४२ **ब्रह्मयोनि** = 'ब्रह्म' आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र की 'योनि' उत्पत्ति के आधार होने से आपको ब्रह्म योनि कहते हैं।

५४३ **स्वयबुद्ध** = स्वय ही बोध को प्राप्त होने से आप स्वय बुद्ध हैं।

५४४ **ब्रह्मज्ञ** = 'ब्रह्म शुद्ध भगवान आत्मा के 'प्रज्ञ' ज्ञाता होने से आप ब्रह्मज्ञ कहलाते हैं।

५४५ **ब्रह्मतत्ववित** = 'ब्रह्म' त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा के स्वरूप को जानते हैं। इसलिए ब्रह्मतत्ववित कहलाते हैं।

५४६ **पूतात्मा** = कर्म कलक रहित आपका आत्मा है। अत आप पूतात्मा कहाते हैं।

५४७ **स्नातक** = शुद्धात्मा की पूर्णता को प्राप्त आत्मा होने से आप स्नातक कहलाते हैं।

५४८ **दान्त** = 'द' अभयदान देना आपका 'अन्त' स्वभाव होने से/अथवा स्ववश, आत्मनियत्रित, उदार होने से आप दान्त कहलाते हैं।

५४९ **भदन्त** = 'भ' पुज। आपका आत्मा स्ववश का समूह होने से भदन्त कहलाते हैं।

५५० **वीतमत्सर** = आपका मत्सर भाव वीत जाने से वीतमत्सर कहलाते हैं।

५५१ **धर्मवृक्षायुध** = आपका आत्मा धर्म का फल निर्वाण देने से धर्मवृक्ष और कर्म शत्रुओ को मारने से आयुध हैं। अत आप धर्मवृक्षायुध कहलाते हैं।

५५२ **अक्षोभ्य** = आप मे क्षोभ का अभाव होने से अक्षोभ्य कहलाते हैं।

५५३ **प्रपूतात्मा** = आपका आत्मा 'प्रपू' प्रकृष्ट रूप से स्वय पवित्र है और दूसरे आत्माओं को पवित्र करता है एवं 'त' आभ्यन्तर ज्ञान लक्ष्मी से अलकृत होने से आप को प्रपूतात्मा कहते हैं।

५५४ **अमृतोद्भवा** = 'अमृत' मरण रहित दशा अर्थात् मोक्ष की 'उद्भव' उत्पत्ति भव्य जीवो को आपके निमित्त से होती है। अत आपको अमृतोद्भव कहा जाता है। अथवा आपके जन्म मरण का अभाव होने से आपको अमृतोद्भव कहा जाता है।

५५५ **मंत्रमूर्ति** = 'मत्र' स्तुति द्वादशाग की आप 'मूर्ति' आकार है। अत आप मत्रमूर्ति कहलाते हैं।

५५६ **स्वसौम्य** = आपका आत्मा स्वय से ही सौम्य होने से स्वसौम्य कहलाता है।

५५७ **स्वतत्र** = 'तत्र' करण, औषधि, मुख्य सिद्धात आदि अर्थो मे आपका आत्मा व्याप्त है। अत आप स्वतत्र कहलाते हैं। अथवा आप स्वय ही अपने शासक हैं। आपका अन्य कोई शासक नही है अत आप स्वतत्र कहलाते हैं।

५५८ **ब्रह्मसम्भव** = 'ब्रह्म' शुद्ध चिद्रूप की 'सम्भव' पुष्टि, परिचय, समानता मिलाना आदि अनेक कारणो के लिए मूल प्रयोजन भूत हो अत आप ब्रह्मसम्भव कहलाते हैं।

५५९ **सुप्रसन्न** = आप 'सु पूर्ण, सर्वाधिक, सुलभ रूप से, प्रसन्न, पवित्र, निर्मल, आनदित, दयालु, अनुग्रहशील, मगलप्रद हैं। अत आप सुप्रसन्न कहलाते हैं।

५६० **गुणाम्भोधि** = आप ज्ञान आदि अनत गुणो के अम्भोधि होने से आपको गुणाम्भोधि कहा जाता है।

५६१ **पुण्यापुण्यनिरोधक** = पुण्य-पाप का निरोध कर सवर रूप हुए। अत आप पुण्यापुण्यनिरोधक कहे जाते हैं।

५६२ **सुसवृत्त** = आपका आत्मा 'सु' पूर्णत 'सवृत्त' सवर स्वरूप है, अनत गुणो से भरा हुआ है। इसलिए आपको सुसवृत्त कहा जाता है।

५६३ **सुगुप्तात्मा** = आपका आत्मा सर्व प्रकार सुरक्षित है, अपने स्वरूप मे गुप्त है अत आप सुगुप्तात्मा कहलाते हैं।

५६४ **सिद्धात्मा** = आपका आत्मा 'सिद्ध' = सम्पन्न, प्राप्त, मगलप्रद, पूर्णत विज्ञ, दक्ष, पवित्रिकृत, मुक्त, अलौकिक, अविनश्वर प्रसिद्ध

उज्जवल है। अत आप सिद्धात्मा कहलाते है।

५६५ **निरुपल्लव** = आपका आत्मा 'उपल्लव उपसर्ग, जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शोक, मोह से रहित है। अत आप निरुपल्लव कहे जाते है।

५६६ **महोदर्क** = महा + उदर्क। आप महा केवल ज्ञान रूप 'उदर्क अतिम फल को प्राप्त होने मे महोदर्क कहलाते है।

५६७ **महोपाय** = रत्नत्रय की एकता की पूर्णतारूप महा उपाय को प्राप्त होने से आप महोपाय कहलाते है।

५६८ **जगदेकपितामह** = जगत् के परम हितैषी होने से आप जगदेकपितामह कहे जाते है।

५६९ **महाकारुणिक** = आपका स्वभाव महान दयालु होने से महाकारुणिक कहलाते है।

५७ **गुण्य** = चौरासी लाख उत्तर गुणो से युक्त होने के कारण आपको गुण्य कहा जाता है।

५७१ **महाक्लेषाकुश** = महा क्लेश रूपी गजा को जीतने के लिए आप अकुश समान है। अत आप महाक्लेशाकुश कहलाते है।

५७२ **शुचि** = शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव रूप रहने से आप शुचि कहे जाते है।

५७३ **अरिजय** = मोह अरि को जीतने से अरिजय कहलाते है।

५७४ **सदायोग** = आप सदा शुक्ल ध्यान से युक्त है/अथवा आप अपने शुद्ध स्वभाव से युक्त रहते है। इसलिए आप सदायोग कहलाते है।

५७५ **सदाभोग** = आपको सदैव ही परमानदामृत का भोग प्राप्त होने से सदाभोग कहलाते है।

५७६ **महाधृति** = आप सदा महा धृति धैर्य को धारण करते है। अत महाधृति कहलाते है।

५७७ **परमौदासिता** = आप स्तोतक और निदक, कचन कॉच, अर्ध्यावतारण, असिप्रहारण मे परम उदासीनता से अवस्थित रहते है। इसलिए आपको परमौदासिता कहा जाता है।

५७८ **अनाश्वान** = आप शाश्वत् कल्याण के मार्ग मे आरूढ होने एव त्रिजगत् के विश्वासपात्र होने से आप अनाश्वान कहलाते है। अथवा अनाश्वस् भोजन न करने वाले होने से आपको अनाश्वान कहा जाता है।

५७९ **सत्याशी** = आपका अभय दान रूपी आशीर्वाद सत्य ही होता है। इसलिए आपको सत्याशी कहा जाता है।

५८० **शान्तनायक** = मोह क्षोभ रहित मुनियो के आप नायक है। अत आप शान्तनायक कहे जाते हैं।

५८१ **अपूर्ववैद्य** = ससारी जीवो के भव रोग का उपचार अन्य किसी ने नही किया। आपने सर्वथा सदा के लिए दूर कर दिया अत आप अपूर्व वैद्य कहलाते है।

५८२ **योगज्ञ** = योग के विशेष ज्ञाता होने से आप योगज्ञ कहलाते है।

५८३ **धर्ममूर्ति** = अहिसा, रत्नत्रय, दशलक्षण धर्म की आप मूर्ति होने से आपको धर्ममूर्ति कहा जाता है।

५८४ **अधर्मधक्** = अधर्म को नष्ट करने वाले होने से आपको अधर्मधक् कहा जाता है।

५८५ **ब्रह्मेट्** = ब्रह्म शुद्ध स्वभाव के ईश्वर होने से ब्रह्मेट् कहलाते है।

५८६ **महाब्रहस्पति** = महाब्रह्म = अनत चतुष्टय धारी के आप स्वामी है इसलिए आपको महाब्रहस्पति कहते है।

५८७ **कृतकृत्य** = कृत्य कार्यो को आपने कर लिया है। इसलिए आप कृतकृत्य कहलाते है।

५८८ **कृतकृतु** = कृत + कृतु। कृतु = पूजन, यज्ञ। भव्यो द्वारा की गई आप की पूजा उन्हे मोक्ष प्रदान करती है। अथवा आपने कर्मक्षय करने का यज्ञ पूरा कर लिया है। अर्थात् आप कृतकृतु कहलाते है।

५८९ **गुणाकर** = आप छ्यालीस मूल गुण, चोरासी लाख उत्तर गुण, ज्ञान आदि अनत गुणो के आकर खानि होने से आपको गुणाकर कहते है।

५९० **गुणोच्छेदी** = विभाव गुणो का उच्छेद करने से गुणोच्छेदी कहा जाता है।

५९१ **निर्निमेष** = नेत्रो के उन्मीलन-निमीलन, अर्थात् पलको के न झपकने से आप निर्निमेष कहे जाते है।

५९२ **निराश्रय** = सासारिक आश्रय रहित होने से निराश्रय कहलाते है।

५९३ **सूरि** = आप भव्य जीवो मे आत्मोद्धारक भावो को 'सूते' उत्पन्न करते है। अत आपको सूरि कहते है।

५९४ **सुनयतत्वज्ञ** = वस्तु के अनत धर्मों मे से किसी एक धर्म को अविरोध पूर्वक कथन करने वाले नयो के विशेषज्ञ होने से आप सुनयतत्वज्ञ कहलाते हैं।

५९५ **महामैत्रीमय** = महान् मित्रता से/अथवा सर्व जीवो के आप हितैषी होने से महामैत्रीमय कहलाते हैं।

५९६ **शमी** = ज्ञानवान, ध्यानाग्नि वीतराग, समता भावी अनेक अर्थ हैं। जो आप मे सभी घटित होते हैं। इसलिए आपको शमी कहते हैं।

५९७ **प्रक्षीणबध** = आपने सर्व कर्म बधनो को प्रकृष्ट रूप से क्षीण कर दिया है। अत आप प्रक्षीणबध कहलाते हैं।

५९८ **निर्द्वन्द** = आप दुविधा रहित होने से निर्द्वन्द कहे जाते है।

५९९ **परमर्षि** = केवल ज्ञान रूपी परम + ऋद्धि धारी होने से परमर्षि है।

६०० **अनतग** = अनत गुणो से सम्पन्न, अनत चतुष्टय युक्त होने से अनत है।

: निर्वाण शतक :

६०१ **निर्वाण** = नि + वाण। आप काम के वाणो से। दु ख की कारणभूत शल्यो से रहित होने से। अथवा अनत सुख प्राप्त करने से। अथवा जिन कल्पी होकर वन मे रहने से आप निर्वाण कहलाते है।

६०२ **सागर** = 'सा' लक्ष्मी 'गर कठ। आपके गले मे ज्ञान लक्ष्मी/मोक्ष लक्ष्मी आपका आलिंगन करती है। अथवा आप भव्य जनो को मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करते है। अथवा आपने बाह्य लक्ष्मी को गर विष के समान दीक्षा क्षण ही छोड़ दिया है इसलिए आप सागर कहलाते हैं।

६०३ **महासाधु** = आप महा वैराग्य सम्पन्न साधु होने से / अथवा तीर्थंकर जैन महापद सयुक्त साधु होने से आप महासाधु कहलाते है।

६०४ **विमलाभ** = आपका आत्मा कर्म कलक रहित हो विमलता को प्राप्त हुआ है अत आप विमलाभ कहलाते हैं।

६०५ **शुद्धाभ** = सर्व विभागो से रहित शुद्ध आभा-ज्ञान ज्योति को प्राप्त होने से शुद्धाभ कहलाते हैं।

६०६ **श्रीधर** = आप 'श्री' समवशरण रूप बाह्य और केवल ज्ञान रूप आभ्यन्तर लक्ष्मी को धारण करने से श्रीधर कहलाते हैं।

६०७ **दत्त** = आप अपने शुद्ध स्वभाव मे 'दत्त' समर्पित हैं। अथवा मुमुक्षुओ को मोक्ष का मार्ग 'दत्त' प्रस्तुत करते हैं। इसलिए आप दत्त कहलाते है।

६०८ **अमलाभ** = आप सर्व मल रहित होने से/अथवा 'अमल' गणधर आप गणधर आदि से शोभित है। अर्थात् आपकी दिव्य ध्वनि की प्ररूपणा करने को गणधर होते हैं। अत आप अमलाभ कहलाते हैं।

६०९ **उद्धर** = (उत् + धर) आप 'उत्' ऊर्ध्व लोक के अग्र भाग मे/ सिद्ध पद मे भव्यो को 'धर' धरते हैं। उत्कृष्ट समवशरण धारण करने से आप उद्धर कहे जाते हैं।

६१० **अग्नि** = कर्म दहन को अग्नि समान है। अथवा अग्निशिखावत् ऊर्ध्व गमन स्वभावी होने से आप अग्नि कहलाते है।

६११ **सयम** = सयम धारण करने से आप सयमी कहलाते हैं।

शिव = कल्याण। आप स्वय कल्याण स्वरूप होने से शिव कहलाते है। अथवा आप शिव को करने वाले होने से आपको शिव कहते हैं।

६१३ **पुष्पाजली** = इन्द्रादि देव भक्ति विभोर हो कररूपी पुष्पो की अजली बाधे खड़े रहते है। अथवा पुष्पवृष्टि होने से आप को पुष्पाजली कहते है।

६१४ **शिवगण** = 'शिव', मोक्ष, कल्याण, समृद्धि, मगल परम आनन्द, शुद्धता गण समूह, अनुचर, एक स्वरूप, बारह सभाओ का प्रमुख, जोड़ने वाला, लगाना आदि सभी अर्थ आप मे समाहित होने से आपको शिवगण कहते है।

६१५ **उत्साह** = प्रयत्न, शक्ति, धैर्य, योग्यता, बल, तेज अनेक अर्थ होते है। जो आप मे सभी समाहित हैं।

६१६ **ज्ञानसज्ञक** = ज्ञान ही आपकी सज्ञा है। अर्थात् ज्ञान स्वरूप आप हैं। इसलिए आपको ज्ञानसज्ञक कहा जाता है।

६१७ **परमेश्वर** = परम पद के ईश्वर होने से आप परमेश्वर हैं।

६१८ **विमलेश** = 'वि' विशेष 'म' मल रहित जनो के आप ईश होने से आप विमलेश कहलाते हैं।

६१९ **यशोधर** = यश को धारण करने से यशोधर कहे जाते हैं।

६२०. **कृष्ण** = (कृष्) कृष करना, खीचना, झुकाना, स्वामी होना, दमन करना, प्राप्त करना, हटाना, वृद्धि करना, तीर्थेष आदि अनेक अर्थ है जो आप मे सभी घटित होते है।

६२१ **ज्ञानमती** = केवल ज्ञान ही आपकी मति है। अत आप ज्ञानमति कहलाते है।

६२२ **शुद्धमति** = ' ापकी मति पूर्ण शुद्ध होने से शुद्धमति कहलाते है।

६२३ **श्रीभद्र** = आप 'श्री' नि श्रेयस् रूप से 'भद्र' मनोहर होने से श्रीभद्र कहलाते है।

६२४ **शान्त** = सर्व कर्म मल शान्त हो जाने से आप शान्त कहे जाते है।

६२५ **वृषभ** = अहिसा मयी 'वृष' धर्म से 'भ' शोभित होते है। अत आप वृषभ कहलाते है।

६२६ **अजित** = कर्म शत्रुओ से अजेय होने से अजित कहलाते है।

६२७ **सम्भव** = आपका भव पर्याय 'स समीचीन, कल्याण स्वरूप होने से। भले प्रकार से भव भय दूर करने से आप सम्भव कहलाते है।

६२८ **अभिनन्दन** = सर्व जीवो को आनन्द देने वाले होने से आप अभिनन्दन कहलाते है।

६२९ **सुमति** = उत्तम मति धारी होने से आप सुमति कहलाते है।

६३० **पद्मप्रभ** = पद् + म = आपके चरणो को 'मा लक्ष्मी आश्रय पाकर प्रभावान हो जाती है। अत आप पद्मप्रभ कहलाते है। अथवा विहार के समय देवगण पैरो के नीचे कमलो को रचते है आपकी प्रभा से कमल सुशोभित दिखाई देते है। इसलिए आपको पद्मप्रभ कहते है।

६३१ **सुपार्श्व** = कुठार से सुसज्जित योद्धा, जिनेन्द्र का विशेषण, निकट, सुशरण देने वाले आदि अनेक अर्थ है। आप सर्व जीवो को भले प्रकार जिन बनाते है अत आप सुपार्श्व कहलाते है।

६३२ **चन्द्रप्रभ** = आप चन्द्र की शीतल प्रभा से अधिक शीतलता धारक होने से आप चन्द्रप्रभ कहलाते है।

६३३ **पुष्पदन्त** = 'पुष्प = शौर्य, रत्न, आनन्द, शोभा 'दन्त सर्वोच्चता होने से आप पुष्पदन्त कहलाते हैं।

६३४ **शीतल** = 'शी' स्वरूप विश्रान्ति, सोना, 'तल' स्वभाव आधार होने से आप शीतल कहलाते है।

६३५ **श्रेयान्** = आप अत्यधिक प्रशसा के पात्र होने से श्रेयान् कहलाते हैं।

६३६ **वासुपूज्य** = इन्द्र के द्वारा पूज्य होने से वासुपूज्य कहलाते हैं।

६३७ **विमल** = विशेष रूप से कर्म मल रहित होने के कारण आपको विमल कहा जाता है।

६३८ ***अनतजित*** = *आपने अनत ससार को जीतने से/**अथवा** अनत धर्मों* के पार को प्राप्त किया है। इसलिए अनतजित कहलाते हैं।

६३९ **धर्म** = ससारी जीवो को इष्ट स्थान मे धरते है। अत धर्म कहलाते है।

६४० **शान्ति** = सर्व कर्मों के विघ्नो को शान्त कर लिया। अत आप शान्ति कहलाते है।

६४१ **कुन्थु** = परिषह जयी एव चित् स्वभाव का आलिगन किये रहने से आप कुन्थु कहलाते है।

६४२ **अर** = मोक्षार्थियो को धर्म चक्र के अर स्वरूप होने से अर है।

६४३ **मल्ल** = मल्ल धातु धारणार्थक है। आप भव्य जीवो को इष्ट/मोक्ष मे धरते है। अथवा आपने मोह मल्ल को उसकी सेना सहित हत किया अत आप मल्ल कहलाते है।

६४४ **मुनिसुव्रत** = मुनि अवस्था के अन्तर्गत सदा ब्रह्म स्वरूप मे रहने का सुव्रत किया इसलिए आप मुनिसुव्रत कहलाते हैं।

६४५ **नमि** = तीन लोक के सभी जीव आपको नमस्कार करते है। अत आप नमि कहलाते है।

६४६ **नेमि** = आप भव्य जीवो को ससार सागर की 'नेमि' = सीमा से पार ले जाते है अत नेमि कहलाते है। अथवा आप ससार रूपी पर्वत को 'नेमि वज्र के समान है। अथवा भव्यो को रत्नत्रय का भवन बनाने के लिए 'नेमि' पृथ्वी है। अत आप नेमि कहलाते है।

६४७ **पार्श्व** = आप निज शुद्ध चैतन्य स्वभाव के पास रहते है। अथवा ज्ञानाकार रूप से रहते हैं। अत आप पार्श्व कहलाते है।

६४८ **वर्द्धमान** = आप ज्ञान वैराग्य और अनत चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सदा बढ़ते रहते है। अत आप वर्द्धमान कहलाते हैं।

६४९ **महावीर** = अतुल वीर्यवान होने से महावीर कहलाते है।

६५० **वीर** = अपने चैतन्य स्वभावी 'वीर' स्वरस हैं। अथवा कर्म दहन

करने को 'वीर' अग्नि समान हैं। अथवा अनत बल के धनी होने से आप वीर कहलाते है।

६५१ **सन्मति** = भव्य जीवो के शाश्वत मति देने वाले होने से सन्मति कहलाते हैं।

६५२ **महतिवीर** = 'म' कर्म मल के 'हति' हनन करने वाले 'वीर' योद्धा/ सुभट होने से आप महतिवीर कहे जाते हैं।

६५३ **महापदन** = केवल ज्ञान स्वरूप आभ्यन्तर महापदन के धारण करने से/अथवा महा 'पदन अतीन्द्रिय पदार्थ ध्रुव, अचल, अनालम्ब, ज्ञानात्मक, दर्शन भूत का प्रतिपादन करने से आप महापदन कहलाते हैं।

६५४ **सूरदेव** = सूरवीरो के देव हैं। अथवा 'सूर' सूर्य, ज्ञानवान, नायक राजा आदि अनेक अर्थ हैं। जो आप मे समाहित हैं।

६५५ **सुप्रभ** = चैतन्य प्रभावी उत्तम प्रभा से युक्त हैं। इसलिए आप सुप्रभ कहलाते हैं।

६५६ **स्वयप्रभ** = आप स्वाश्रय से निज स्वरूप की प्रभा सम्पन्न होने से स्वयप्रभ कहलाते हैं।

६५७ **सर्वायुध** = आप बाह्य और आभ्यान्तर सर्व शत्रुओ के प्रहारो को आप निष्क्रिय करने के लिए आप निष्क्रिय आत्मा रूपी 'आयुध' ढाल का आलम्बन लिए हैं। अत आप सर्वायुध कहलाते हैं।

६५८ **जयदेव** = आप इन्द्रिय जयी होने से/अथवा 'जय' पूर्ण सयम होने से आप जयदेव कहलाते हैं।

६५९ **उदयदेव** = आपके सर्वांग से ज्ञान 'उदय' होता है। अथवा आपके सर्वांग मे ज्ञान का आविर्भाव है। अथवा आप ज्ञान से 'उदय' समृद्ध हैं। अथवा आप शुद्ध चैतन्य से निष्पन्न हैं। अथवा आप के ज्ञान प्रकाश के उदय से लोकालोक प्रकाशित है। अत आप उदयदेव कहलाते हैं।

६६० **प्रभादेव** = अनत ज्ञान प्रभा से युक्त देव हैं। अत आप प्रभादेव कहलाते हैं।

६६१ **उदंक** = 'अक' मल रहित होने से/अथवा सर्व 'अक' आभूषण रहित होने से उदक कहलाते हैं।

६६२ **प्रश्नकीर्ति** = प्रश्नकर्ता के प्रश्न उत्पन्न होते ही उसे उसका समाधान

हो जाता है। उससे जगत् जन उनका यशोगान करते हैं। अत आप प्रश्नकीर्ति कहलाते है।

६६३ **जय** = कर्मों से विजय पाने से आप जय कहे जाते हैं।

६६४. **पूर्णबुद्धि** = लोकालोक को जानने वाली केवल ज्ञान बुद्धि ऋद्धि धारी होने से आप पूर्णबुद्धि कहलाते हैं।

६६५ **निष्कषाय** = आप कषाय रहित हैं अत निष्कषाय कहे जाते हैं।

६६६ **विमलप्रभ** = मल रहित विशिष्ट प्रभा धरी होने से विमलप्रभ कहलाते हैं।

६६७ **बहल** = प्रचुर **महान**, सघन, दृढ, चन्दन आदि अनेक अर्थ हैं। आप मे सभी अर्थ गर्भित होने से बहल कहलाते हैं।

६६८ **निर्मल** = सकल मल रहित होने से निर्मल कहलाते हैं।

६६९ **चित्रगुप्त** = 'चित्र' उज्जवल, रुचिकर, विविध, अद्भुत 'गुप्त' प्ररक्षित अदृश्य, रहस्य है। अत आप चित्रगुप्त कहलाते है।

६७० **समाधिगुप्त** = रत्नत्रयात्मक 'समाधि' समरासी भावो से सुरक्षित हैं। अत आप समाधिगुप्त कहलाते हैं।

६७१ **स्वयभू** = स्वयमेव-बोधि, समाधि को प्राप्त होने से स्वयभू कहे जाते हैं।

६७२ **कन्दर्य** = 'क' पूर्ण सुख के द्वारा 'दर्य' मोह क्षेभ का हनन कर दिया, अत आप कन्दर्य कहलाते हैं।

६७३ **जयनाथ** = 'जय' सकल सयमी मुनियो के आप नाथ हैं। अथवा भव्य जीव आपकी जयकार करते समय जयनाथ जयनाथ कहते है। अत आप जयनाथ कहलाते हैं।

६७४ **श्रीविमल** = 'श्री' ज्ञान लक्ष्मी जो मल रहित है। उससे आप युक्त हैं। अत श्रीविमल कहलाते हैं।

६७५ **दिव्यवाद** = आपका वाद अखण्ड होने से आप दिव्यवाद कहलाते हैं।

६७६ **अनतवीर्य** = आप अनत वीर्य के धारी होने से अनतवीर्य कहलाते हैं।

६७७ **पुरुदेव** = 'पुरु' उत्तम गुणो के देव होने से/अथवा उत्तम गुणो को देने से पुरुदेव कहलाते हैं।

६७८ **सुविधि** = आप मोक्ष की उत्तम रत्नत्रय की एकता की पूर्णता रूप

विधि को धारण करने से सुविधि कहलाते है।

६७९ **प्रज्ञापारमित** = 'प्रज्ञा' ज्ञान के पार होते हुए भी 'मित' मात्र ज्ञानात्मक हैं। अत प्रज्ञापारमित कहलाते हैं।

६८० **अव्यय** = आपके शुद्ध चैतन्य स्वरूप का कभी व्यय न होने से अव्यय है। अथवा आपका चित् स्वभाव लिग के भेद रहित होने से आप को अव्यय कहा जाता है।

६८१ **पुराणपुरुष** = आपका 'पुरुष' उत्तम गुणो का स्वामी होकर प्रवर्तन करने वाला 'पुराण' अनादि अनत होने से आप पराणपुरुष है।

.८२ **धर्मसारथि** = आप रत्नत्रय धर्म के चालक होने से धर्मसारथि कहे जाते हैं।

६८३ **शिवकीर्तन** = आपका कीर्तिन 'शिव' कल्याण स्वरूप है। अत आप शिवकीर्तन कहलाते हैं।

६८४ **विश्वकर्मा** = विश्व का हित करने वाले होने से आप विश्वकर्मा कहलाते हैं।

६८५ **अक्षर** = 'अ' स्वभाव, पवित्रता को 'र' प्रताप का 'क्ष' क्षरण न होने से/ 'क्षर 'शरीर' रहित हैं। अत अक्षर कहलाते है। 'अक्ष इन्द्रयॉ र रहित/इन्द्रियो से रहित होने के कारण/अथवा 'अक्षर अनादि अनत चैतन्य स्वभावी होने से आप अक्षर कहलाते है।

६८६ **अछद्मा** = छदन = अल्प ज्ञान रहित होने से अछद्म है। 'छद् आवरण 'मा ज्ञान लक्ष्मी अ' रहित/आपकी ज्ञान रूप आभ्यन्तर लक्ष्मी और समवशरण बाह्य लक्ष्मी किसी से छिपी नही अर्थात् प्रगट है। इसलिए आपको अछद्मा कहा जाता है।

६८७ **विश्वभू** = ज्ञान अपेक्षा विश्व के स्वामी होने से आप विश्वभू कहे जाते है।

६८८ **विश्वनायक** = विश्व के नायक होने से आप विश्वनायक कहलाते हैं।

६८९ **दिगम्बर** - दिशाएँ ही 'अम्बर' पोशाक, परिधान हैं। अत आप दिगम्बर कहे जाते है।

६९० **निरातक** = आतक रहित होने से निरातक कहलाते है।

६९१ **निशरेक** = 'आरेक' सकुचित 'नि ' रहित। अर्थात् आप प्राणी मात्र को चेतनत्व रूप देखते है। अथवा 'आरेक' शका आप शका रहित

है और भव्यो को मिशक करते हैं। अत आप निशरेक कहलाते है।

६९२ **भवान्तक** = भव का अन्त करने वाले होने से आप भवान्तक कहलाते है।

६९३ **दृढव्रत** = अपने व्रतो मे दृढ है। अत आपको दृढव्रत कहा जाता है।

६९४ **नयोतुंग** = वस्तु स्वरूप का विभिन्न नयो द्वारा उन्नत प्रतिपादन करने से नयोतुग कहलाते है।

६९५ **निष्कलक** = राग-द्वेष रहित होने से आप निष्कलक कहलाते है।

६९६ **अकलाधर** = अकल + अधर 'अकल' अखण्ड, परमब्रह्म का अधर व्याख्यान/उपदेश देने से। अ-कल अशरीरी आत्मा का ही अधर सेवन करते है। अथवा आप 'कला' चन्द्रकला की भाति हानि वृद्धि रहित होने से अकलाधर कहे जाते है।

६९७ **सक्लेशापह** = आप स्वय सक्लेश रहित हैं और आपके स्मरण से सक्लेश दूर हो जाता है। अत आप सक्लेशापह कहलाते हैं।

६९८ **अक्षय्य** = आप अक्षय सुखमय है। अत आप अक्षय्य कहलाते है।

६९९ **क्षान्त** = धैर्यवान, क्षमावान, सहनशील, सहिष्णु आदि अनेक अर्थ है जो आप मे सभी गुण विद्यमान है। अत आप क्षान्त कहे जाते है।

७०० **श्रीवृक्ष** = श्रीवृक्ष = अशोक वृक्ष आप के निकट शोभायमान होता है। अत आपको श्रीवृक्ष कहा जाता है। अथवा श्री 'ज्ञान' और वृक्ष = प्रमाण नय और निक्षेप। आपके ज्ञान के प्रमाण, नय, निक्षेप का अभेद प्रतिपादन होने से आप को श्रीवृक्ष कहते है।

: ब्रह्मशतक :

७०१ **ब्रह्मा** = शुद्ध चित् से सबद्ध, पुनीत ज्ञान वाले, पवित्र पावन, उच्च पद धारी, सर्व जीव हितकारी आदि अनेक अर्थ है। आप मे सभी गर्भित है। इसलिए आप ब्रह्मा कहलाते है।

७०२ **चतुर्मुख** = समवशरण मे आप के चार दिशाओ मे देखने पर आपका मुख दिखता है। अथवा 'चतुर्मुख = चार अनुयोग, चार पुरुषार्थ, चार आराधना, चतुष्टय आदि अनेक अर्थ विवक्षा वश समाहित

हैं। अत आप को चतुर्मुख कहा जाता है।

७०३ **धाता** = आपकी भक्ति से मुमुक्षु मोक्ष पद धारण करते हैं। इसलिए आप को धाता कहा जाता है।

७०४ **विधाता** = सभी जीव आप के मार्ग का अनुशरण कर विशिष्ट पद धारण करते हैं। इसलिए आप को विधाता कहा जाता है।

७०५ **कमलासन** = समवशरण मे आप कमल के ऊपर अतरिक्ष मे विराजमान रहते हैं। अथवा भव्य जन आपकी भक्ति से 'कमल' निर्मल आत्मा मे 'आसन' बैठते है/विश्राम करते है अत आप कमलासन कहे जाते हैं।

७०६ **अब्जभू** = अब्ज = जल - जल को पूजा मे ज्ञान का प्रतीक माना है। आप ज्ञान रूप मे ही होते है/पाये जाते है। अत आप अब्जभू कहलाते हैं।

७०७ **आत्मभू** = शुद्ध-बुद्ध सुख स्वरूप आत्मा मे ही निवास करते है। अथवा आपके ज्ञान आत्मा मे लोकालोक वास करता है। अत आप आत्मभू कहे जाते है।

७०८ **सृष्टा** = आप के उपदेश से प्रत्येक जीव स्वय सुख का सृजन करता है। अतएव आप सृष्टा कहलाते हैं।

७०९ सुर**ज्येष्ठ** = देवताओ मे ज्येष्ठ है। अत आप सुरज्येष्ठ कहलाते है।

७१० **प्रजापति** = भव्य जनो के स्वामी है। अर्थात् आप के शासन की आज्ञा मानते है। अत आप प्रजापति कहलाते हैं।

७११ **हिरण्यगर्भ** = आप का गर्भ उत्तम होने से। अथवा गर्भ समय हिरण्यवृष्टि होने से आप हिरण्यगर्भ कहलाते है।

७१२ **वेदज्ञ** = वेद = स्व-पर के भेद ज्ञान को वेद कहते है। उस के ज्ञाता होने से। अथवा सर्व 'वेद' = प्रमेयो के ज्ञाता होने से आप को वेदज्ञ कहते हैं।

७१३ **वेदाग** = वेद + ज्ञान + अग = आत्म। आपका आत्मा ज्ञान स्वरूप होने से। अथवा 'वेद पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति रूप उपय आप से प्रगट होता है। अत आप वेदाग कहलाते है।

७१४ **वेदपारग** = आप ज्ञान के पार को प्राप्त है। इसलिए आप वेदपारग कहे जाते हैं।

७१५ **अज** = पुन जन्म न लेने से आप अज कहे जाते है।

७१६ **मनु** = भव्यो के हितकर होने से। अथवा वस्तु स्वरूप मनन करने के कारण आप मनु कहलाते हैं।

७१७ **शतानंद** = आप रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग के निर्माता। एव सरक्षक होने से आप शतानद कहे जाते है। अथवा 'शत' अनत सूचक होने से आप अनत आनद स्वरूप होने से शतानद कहलाते है।

७१८ **हसयान** = आपका 'हस' परमात्म स्वरूप मे 'यान' गमन होने से। अथवा आपका 'यान' गमन 'हस' सूर्य समान होने से आप को हसयान कहा जाता है।

७१९ **त्रयीमय** = आप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मयी होने से त्रयीमय कहा जाता है।

७२० **विष्णु** = केवल ज्ञान द्वारा आप जगत् का पालन करते है। इसलिए आप को विष्णु कहा जाता है।

७२१ **त्रिविक्रम** = रत्नत्रय स्वरूप तीन 'विक्रम' विशिष्ट सम्पदाऐ प्राप्त होने से आपको त्रिविक्रम कहा जाता है।

७२२ **सौरि** = दिव्य पुरुषार्थ को धारण करने से आप सौरि कहे जाते है।

७२३ **श्रीपति** = आप ज्ञान के स्वामी होने से श्रीपति कहलाते है।

७२४ **पुरुषोत्तम** = पुरुषो मे सर्वोत्तम होने से पुरुषोत्तम कहलाते है।

७२५ **वैकुण्ठ** = आप जन्म से ही विचक्षण ज्ञानधारी होने से वैकुण्ठ कहे जाते है।

७२६ **पुडरीकाक्ष** = आपका आत्मा 'पुडरीक' श्रेष्ठ होने से। अथवा आप ज्ञान नेत्र स्वरूप होने से पुडरीकाक्ष कहलाते है। अथवा आपका आत्मा 'पुडरीक' प्रधान होने से पुडरीकाक्ष कहलाते है।

७२७ **हृर्षीकेश** = 'हृर्षीक इन्द्रियो को वश मे करने से आप हृर्षीकेश कहलाते है।

७२८ **हरि** = रक्षक, कल्याण स्वरूप सूर्य, चन्द्रमा, प्रकाश पुज, अग्नि, पवन आदि अनेक अर्थ है। जो आप मे सभी घटित होते हैं। अत आपको हरि कहा जाता है। अथवा कर्मो का हरण करने से हरि कहे जाते हैं।

७२९ **स्वयभू** = स्वय ज्ञान स्वरूप होने स्वयभू कहलाते हैं।

७३० **विश्वम्भर** = विश्व के जीवो को शाश्वत् सुख का उपाय बताने से आप विश्वम्भर कहलाते है।

७३१ **असुरध्वसी** = मोह रूपी असुर का ध्वस करने से आप असुरध्वसी कहलाते है।

७३२ **माधव** = 'मा' बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी के 'धव' स्वामी होने से आप माधव कहे जाते है।

७३३ **बलिबधन** = 'बलि = आहुति, बधन = कर्मो की। दुष्ट कर्मो की ध्यानाग्नि मे आहुति करने से आप बलि बधन कहलाते है। अथवा 'बलि तीर्थकर प्रकृति का बध करने से आप बलिबधन कहे जाते है।

७३४ **अधोक्षज** = अध अक्षज आप इन्द्रियातीत ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता स्वरूप होने से अधोक्षज कहे जाते है।

७३५ **मधुद्वेषी** = आप ने मधु आदि पॉच मकारो का सेवन पापो का मूल कारण बतलाया। इसलिए आप मधुद्वेषी कहलाते है।

७३६ **केशव** = केश + व। आपने केश प्रकाश पुज द्वारा वीतराग स्वरूप की उपलब्धि का भव्य जीवो को सम्बोधन किया। अथवा आप का वीतराग ज्ञान प्रकाश व मागलिक है अथवा वीतराग ज्ञान प्रकाश ही आपका 'व निवास स्थान है। इसलिए आप केशव कहे जाते है।

७३७ **विष्टरश्रवा** = (विष्टर + श्रवा) = 'विष्टर = सिहासन, श्रवा = सुनना। सिहासन से ४ हाथ ऊपर अतरिक्ष मे विराजमान रह बिना बोले ही, आपके दिव्य रूप से वस्तु स्वरूप श्रोताओ को श्रवण होता है। अत आप विष्टरश्रवा कहे जाते है।

७३८ **श्रीवत्सलाछन** = आप के वक्षस्थल पर श्रीवत्स रोमावर्त रूप 'लाछन / चिन्ह है इसलिए आप को श्री वत्सलाछन कहा जाता है।

७३९ **श्रीमान्** = वाह्य और आभ्यन्तर लक्ष्मी के स्वामी होने से आपको श्रीमान् कहा जाता है।

७४० **अच्युत** = आप अपने शुद्ध चिदानद स्वभाव से अच्युत रहने से आप को अच्युत कहा जाता है।

७४१ **नरकान्तक** = नर + कान्तक। आप मनुष्यो के 'कान्तक प्रिय, इष्ट, सुखकर मनोहर होने से/अथवा न + रत + अन्तक अर्थात् अरति भाव मिटाकर परस्पर मे मैत्री भाव के सदेशक होने से आप नरकातक कहे जाते है।

७४२ **विश्वक्सेन** = विश्व के प्रभु होने से आप विश्वक्सेन कहलाते है।

७४३ **चक्रपाणी** = धर्मचक्र के प्रर्वतक होने से आप चक्रपाणी कहे जाते है।

७४४ **पद्मनाभ** = 'पद्म' = कमलाकर द्रव्य मन स्वरूप की ओर 'नाभ केद्रित है। अत आप पद्मनाभ कहे जाते है।

७४५ **जनार्दन** = समस्त जन समूह आपकी अर्दन प्रार्थना करते है। अथवा आप के मोक्ष मार्ग की याचना करते है। इसलिए आप जनार्दन कहे जाते है।

७४६ **श्रीकठ** = ज्ञान लक्ष्मी आपके कठ मे विराजमान है। अत आप श्रीकठ कहे जाते है।

७४७ **शकर** = 'श' = परमानद स्वरूप सुख के करने से आप शकर कहे जाते है।

७४८ **शम्भु** = आप से भव्य जीवो को सुख प्राप्त होता है इसलिए आप को शभु कहा जाता है।

७४९ **कपाली** = 'क आत्मा ही पा रक्षा कर 'ली रत्नत्रय से विभूषित करते है। अत आप कपाली कहलाते है।

७५० **वृषकेतन** = 'वृष अहिसा धर्म आपकी केतन' ध्वजा है। इसलिए आप को वृषकेतन कहते है।

७५१ **मृत्युजय** = मृत्यु को जीतने से आप मृत्युजय कहे जाते है।

७५२ **विरूपाक्ष** = रूपादि रहित केवल ज्ञान रूप आपका (अक्ष) आत्मा है। अत आप विरूपाक्ष कहलाते है।

७५३ **वामदेव** = आप (वाम) अति सुन्दर मनोहारी देव है अत आप वामदेव कहलाते है।

७५४ **त्रिलोचन** = तीन लोको के लोचन रूप होने से। अथवा जन्म से मति श्रुत, अवधि ज्ञान धारी होने से/अथवा त्रिलोक के ज्ञाता होने से/अथवा मन-वचन काय का लुचन/वश मे करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता रूप मोक्षमार्ग दिखाने से आपको त्रिलोचन कहा जाता है।

७५५ **उमापति** = (उमा) ज्ञान स्वरूप आनद लक्ष्मी के पति होने से आप उमापति कहे जाते है।

७५६ **पशुपति** = (पशु) अबोध जीवो को बोध कराने वाले होने से आप

पशुपति कहलाते है।

७५७ **स्मरारि** = (स्मर + अरि) कामदेव के नाशक होने से आप स्मरारि कहे जाते है।

७५८ **त्रिपुरान्तक** = (त्रिपुर), जन्म-जरा-मरण अथवा औदारिक तैजस और कार्माण इन तीन पुरो का अन्त करने के कारण। अथवा (त्रिपुर) तीन लोक के अत मे आपका (क) आत्मा निवास करता है। अत आप त्रिपुरान्तक कहे जाते हैं।

७५९ **अर्द्धनारीश्वर** = जिनके (अर्द्ध) आधे, (न) नही (अरि) शत्रु अर्थात् चार घातिया कर्म रूप आधे शत्रु नही इस प्रकार के ईश्वर अर्थात् अरहत है। अत आपको अर्द्धनारीश्वर कहा जाता है।

७६० **रुद्र** = आत्म दर्शन होने पर सर्वांग से आनद झरता है अत आप रुद्र कहलाते है।

७६१ **भव** = आपसे तीन जगत् का कल्याण होता है अत आप भव कहे जाते है।

७६२ **भर्ग** = आपने ध्यान अग्नि द्वारा कर्म कलक को भस्म किया। अथवा अनत चतुष्टय धारी होने से भर्ग कहलाते है।

७६३ **सदाशिव** = आप सदैव कल्याण स्वरूप होने से सदाशिव कहलाते है।

७६४ **जगत्कर्ता** = आपसे जगत् आनद प्राप्त करता है। इसलिए आप जगत्कर्ता कहलाते है।

७६५ **अन्धकाराति** = अज्ञानान्धकार नाशक होने से आप अन्धकाराति कहे जाते है।

७६६ **अनादिनिधन** = आप आदि अत से रहित है। अत आप अनादिनिधन कहलाते है।

७६७ **हर** = कर्मो का हरण करने से। अथवा (ह) हिसा के लिए (र) अग्निस्वरूप है अत आप हर कहे जाते है।

७६८ **महासेन** = महाप्रभु होने से अथवा समवशरण मे स्थित सिहासन को महसा कहते है। (इन) आप उस पर सूर्य समान प्रतिभासित होते है। अत आप महासेन कहलाते है।

७६९ **तारकजित्** = (तारक + जित्) ससार समुद्र को तारने वाले गण धरादिको से भी उच्च पद पर आसीन होने से आप तारकजित्

कहलाते है।

७७० **गणनाथ** = (गण) द्वादश भेद रूप सघ के नाथ होने से आप गणनाथ कहलाते है।

७७१ **विनायक** = इन्द्रादिको के विशिष्ट नायक है। अथवा आपका कोई नायक नही है अत आप विनायक कहलाते है।

७७२ **विरोचन** आप (वि) विशेष (रोचन) ज्ञानप्रकाश करने वाले, उज्ज्वल सुहावना सुन्दर स्वरूप प्रगट करने वाले होने से आपको विरोचन कहा जाता है।

७७३ **वियद्रत्न** = (वियद) आकाश (रत्न) श्रेष्ठ आकाश मे गमन करने से। अथवा पचकल्याणको मे रत्न वृष्टि होने से। अथवा आकाश के अत मे विराजमान होने से आप को वियद्रत्न कहा जाता है।

७७४ **द्वादशात्मा** = श्रुत ज्ञान के द्वादशागरूप ही आप का आत्मा है। इसलिए आपको द्वादशात्मा कहा जाता है।

७७५ **विभावसु** = अग्नि सूर्य चन्द्र आदि अनेक अर्थ है। जो आप मे समाहित है। अथवा (विभा) केवल ज्ञान और (वसु) धन है। अथवा विभावो को नाश किया है। इसलिए आप विभावसु कहे जाते है।

७७६ **द्विजाराध्य** = (द्विज) ब्राह्मण, साधु, वृति, पक्षी आदि अनेक अर्थ है। आपकी सभी आराधना करते है। इसलिए आप द्विजाराध्य कहलाते है।

७७७ **वृहद्भानु** = केवल ज्ञान सूर्य, अग्नि। लोकालोक प्रकाशक होने से अथवा कर्म समूह जलाने से आप वृहद्भानु कहलाते है।

७७८ **चित्रभानु** = आपके ज्ञान मे लोकालोक चित्रित होते है इसलिए आप चित्रभानु कहलाते है।

७७९ **तनुनपात्** = केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् शरीर का पात नही होता है अत आप तनुनपात कहलाते है।

७८० **द्विजराज** = व्रतियो के राजा होने से आप द्विजराज कहलाते है।

७८१ **सुधाशोचि** = आपके ज्ञान की (शोचि) किरणे (सुधा) अमृत के समान सुखद है। अत आप सुधाशोचि कहे जाते है।

७८२ **औषधीश** = जन्म मरण को दूर करने वाली रत्नत्रय रूप औषधि के प्रणेता होने से आप को औषधीश कहा जाता है।

७८३ **कलानिधि** = (क) आत्म स्वरूप को जो लावे ऐसी बारह भावनाओ को कला कहते है। आप उनके अक्षय स्थान है। अत आप कलानिधि

कहलाते है।

७८४ **नक्षत्रनाथ** = (नक्ष) गगन/ज्ञान का है उसका जो त्राण करते है उन्हे 'नक्षत्र' अर्थात् ज्ञानी। आप ज्ञानियो के नाथ है। अत आप नक्षत्र नाथ कहलाते है।

७८५ **शुभाशु** = (अशु) केवल ज्ञान की किरणे शुभ्र है कलकरहित है अत आप शुभाशु कहलाते है। अथवा 'अशु' शिष्य। आपके शिष्य विविध ज्ञान के धारक होने से आप शुभाशु कहलाते है।

७८६ **सोम** = रत्नत्रय रूप अमृत को उत्पन्न करने से आप सोम कहलाते है।

७८७ **कुमुदबाधव** = भव्य जीवो के बाधव होने से आप कुमुदबाधव कहलाते है।

७८८ **लेखर्षभ** = (लेख) देवो मे (ऋषभ) श्रेष्ठ होने से लेखर्षभ कहे जाते है।

७८९ **अनिल** = आप ध्यानाग्नि द्वारा कर्मो के दाहक होने से अनिल कहलाते है।

७९० **पुण्यजन** = आप मनुष्यो को कर्म कलक से रहित कर रत्नत्रय द्वारा पवित्र करते है। इसलिए आप पुण्यजन कहलाते है।

७९१ **पुण्यजनेश्वर** = अपनी आत्मा को रत्नत्रय से पवित्र करने वाले मनुष्यो के आप ईश्वर होने से पुण्यजनेश्वर कहलाते है।

७९२ **धर्मराज** = (धर्म) दश लक्षण धर्म, रत्नत्रय धर्म, अहिसा धर्म के राजा होने से आप धर्मराज कहे जाते है।

७९३ **भोगीराज** = (भोगी) चक्रवर्तियो, नाग कुमारो के आप राजा है अत आप भोगीराज कहलाते है।

७९४ **प्रचेता** = आत्मा प्रकृष्ट चेतना स्वरूप होने से। अथवा सर्व सकल्प विकल्प विलीन हो जाने से प्रचेता कहे जाते है।

७९५ **भूमिनदन** = तीन लोक के आनद स्वरूप होने से आप भूमिनदन कहलाते है।

७९६ **सिहकातनय** = आप सिह कारण स्वरूप परमात्म पुत्र होने से अथवा सिह का पुत्र अर्थात् सिह के समान ससार के कारणो को नाश करने वाले होने से सिहकातनय कहलाते है।

७९७ **छायानदन** = आप (छाया) शोभा को (नदयति) बढ़ाते है। अत

आप छायानदन कहे जाते है।

७९८ **बृहतापति** = आप सरेन्द्र नरेन्द्र आदि के पति हैं। अत आप बृहतापति कहलाते है।

७९९ **पूर्वदेवोपदेष्टा** = चौदह पूर्वों के धारी/गण धर देवो के उपदेष्टा होने से आप को पूर्वदेवोपदेष्टा कहा जाता है।

८०० **द्विजराजसमुद्धव** = (द्विज) रत्नत्रय धारी मुनियो मे (राजते) शोभित होता है ऐसे रत्नत्रय को द्विजराज कहते है। रत्नत्रय धारियो मे आपके शुद्धात्म स्वरूप का जन्म होता है। अत आप द्विजराजसमुद्धव कहलाते है।

: बुद्धशतक :

८०१ **बुद्ध** = केवल ज्ञान बुद्धि के धारक है। इसलिए आप को बुद्ध कहा जाता है।

८०२ **दशबल** = उत्तम क्षमा आदि दश धर्म बल की सामर्थ्य रूप होने से आप को दशबल कहा जाता है।

८०३ **शाक्य** = सामर्थ्यवान, होने से/अथवा (श) सुख (अक) पूर्ण ज्ञान को धारण करने से आप को शाक्य कहा जाता है।

८०४ **षडभिज्ञ** = जीवादि छ द्रव्यो को उनके अनत गुणो और उनकी अनत पर्यायो को, एव षड्गुण हानिवृद्धि को जानते है। इसलिए आप षडभिज्ञ कहे जाते है।

८०५ **तथागत** = आपने वस्तु का यथार्थ स्वरूप जान लिया है। अत आप तथागत कहलाते है।

८०६ **समन्तभद्र** = आप (समन्त) सर्वरूप से भद्र है अर्थात् आप का स्वभाव पूर्ण रूप से भद्र है। इसलिए आप को समन्तभद्र कहा जाता है।

८०७ **सुगत** = सहज सुख स्वरूप आत्मा मे ज्ञान सदा को चला जाने/अर्थात् उसमे रम जाने से आप को सुगत कहा जाता है।

८०८ **श्रीघन** = केवलज्ञान द्वारा यथार्थ ज्ञान की वर्षा करने वाले घन पिण्ड होने से आपको श्रीघन कहा जाता है।

८०९ **भूतकोटिदिक्** = (भूत) जीवो को (कोटि) भव का किनारा, चरमसीमा

का दिक् दर्शन कराते हैं। अत आप भूतकोटिदिक् कहलाते हैं।

८१० **सिद्धार्थ** = (सिद्ध + अर्थ) अर्थ = चार पुरुषार्थ, प्रयोजन, रत्नत्रय आदि सिद्ध हुए हैं। अत आप सिद्धार्थ कहलाते है।

८११ **भारजित** = कामदेव, काम विकार को जीतने से आप भारजित कहलाते हैं।

८१२ **शास्ता** = शास्वत धर्म के उपदेशक होने से आप शास्ता कहलाते है।

८१३ **क्षणिकैकसुलक्षण** = (क्षणिक) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप (एक) सर्वज्ञता रूप (सुलक्षण) उत्तम लक्षण से पहचाने जाते है। अत आप क्षणिकैक सुलक्षण कहे जाते है।

८१४ **बोधिसत्व** = (बोधि) रत्नत्रय का सत्व आपके पाया जाता है। इसलिए आप बोधिसत्व कहलाते हैं।

८१५ **निर्विकल्पदर्शन** = आप के शुद्धात्म स्वरूप का दर्शन अथवा निजशुद्धात्म स्वरूप का दर्शन निर्विकल्प होता है। आपने निर्विकल्प दर्शन की साक्षात् मूर्ति है। अत आप निर्विकल्पदर्शन है।

८१६ **अद्वयवादी** = आपने वस्तु स्वरूप के एक-अनेक, नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि परस्पर विरुद्ध धर्मो का प्रतिपादन किया। इसलिए आप अद्वयवादी कहे जाते है।

८१७ **महाकृपालु** = स्व-पर जीवो की रक्षा का उपदेश देने से आप महाकृपालु कहलाते है।

८१८ **नैरात्म्यवादी** = शुद्ध आत्मा स्वरूप के प्रतिपादक होने से आप को नैरात्म्यवादी कहा जाता है।

८१९ **सन्तानशासक** = (सन्तान) विस्तृत। आप का शासन तीन लोक मे विस्तृत है। अत आप सन्तानशासक कहलाते है।

८२० **सामान्यलक्षणचण** = शुद्ध बुद्ध स्वभाव सामान्य लक्षण से विख्यात होने से आप को सामान्यलक्षणचण कहा जाता है।

८२१ **पचस्कन्धमयात्महक्** = (स्कन्ध) भेद, ज्ञान के पॉच भेद हैं। आप पाँचवे ज्ञान अर्थात् केवलज्ञानमय आत्मा है। इसलिए आप को पचस्कन्धमयात्महक कहलाते हैं।

८२२ **भूतार्थभावनासिद्ध** = सत्यार्थ भावना के बल से सिद्ध होने के कारण आपको भूतार्थभावनासिद्ध कहा जाता है।

८२३ **चतुर्भिकशासन** = आपने चार चार अनुयोगो द्वारा वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन किया है। अत आप चतुर्भिकशासन कहलाते हैं।

८२४ **चतुरार्यसत्यवक्ता** = आप चार ज्ञान धारी कुशल गणधरो के यथार्थ उपदेश देने वाले होने से चतुरार्यसत्यवक्ता कहलाते हैं।

८२५ **निराश्रयचित्** = आपका चित् आश्रय रहित होने से आप को निराश्रयचित् कहा जाता है।

८२६ **अन्वय** = आप के अनत गुण अन्वय रूप होने से आप अन्वय कहे जाते है।

८२७ **योग** = शुद्ध स्वरूप मे जुड़ना, मोक्ष फल की प्राप्ति, पूर्ण शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति, परमात्म की प्राप्ति अर्थों से आप समाहित हैं। अत आप योग कहे जाते है।

८२८ **वैशेषिक** = आप ज्ञान आदि अनत गुणो की विशेषतायुक्त होने से आप को वैशेषिक कहा जाता है।

८२९ **तुच्छाभावभित्** = अभाव (तुच्छ) शून्य नही है अर्थात् स्वभावी हैं। अर्थात् भावान्तर स्वभावी है। अन्य पदार्थ के। सद् भाव स्वरूप सिद्ध किया है। इसलिए आप तुच्छाभावभित कहे जाते हैं।

८३० **षटपदार्थहक्** = छ द्रव्यो का उपदेश देने से आप षटपदार्थहक् कहलाते है।

८३१ **नैयायिक** = आप स्याद्वादन्याय के उपदेशक होने से नैयायिक कहे जाते हैं।

८३२ **षोडषपदार्थवादी** = सोलह पद अर्थवादी अर्थात् सोलहकारण भावनाओ का फल कल्याण स्वरूप कहा। अत आप षोडषपदार्थवादी कहे जाते है।

८३३ **पचार्थवर्णक** = आपने पाँच अस्तिकायो का वर्णन किया। अत आप पचार्थवर्णक कहे जाते है।

८३४ **ज्ञानान्तराध्यक्षबोध** = मत्यादि ज्ञानो मे केवलज्ञान (अध्यक्ष) प्रधान होने से आप ज्ञानान्तराध्यक्षबोध कहलाते है।

८३५ **समवायवशार्थभित** = (समवाय) अपृथक् आश्रित पदार्थों को आप पृथक्-पृथक् रूप से जानते हैं। इसलिए आप समवायवशार्थभित् कहलाते हैं।

८३६ **मुक्तैकसाध्यकर्मान्त** = कर्मों का अन्त और चित् स्वभाव का भोगना

ही एक साध्य है। इस प्रकार उपदेश देने के कारण आप मुक्तैकसाध्यकर्मान्त कहे जाते हैं।

८३७ **निर्विशेषगुणामृत** = चैतन्य गुणामृत निर्विशेष होने से आप निर्विशेषगुणामृत कहलाते है।

८३८ **साख्य** = परमेश्वर स्वरूप आप है अत आप साख्य कहे जाते है।

८३९ **समीक्ष्य** = आप सम्यक् प्रकार (ईक्ष्य) देखने योग्य होने से समीक्ष्य कहलाते हैं।

८४० **कपिल** = (क) परमब्रह्म स्वरूप शुद्धात्मा को (पिल) प्रगट करने से आपको कपिल कहते है।

८४१ **पचविशतितत्ववित्** = अहिसा आदि पॉच व्रतो की पच्चीस भावनाओ के रहस्य को जानने के कारण पचविंशतितत्ववित् कहलाते है।

८४२ **व्यात्त्काव्यक्तज्ञविज्ञानी** = आप व्यक्त और अव्यक्त भेद विज्ञानी होने से व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानी कहलाते है।

८४३ **ज्ञानचैतन्यभेदहक** = आप ज्ञान और चेतना के भेदो को यथार्थ जानते है। अत आपको ज्ञानचैतन्यभेदहक कहा जाता है।

८४४ **अस्वसवेदितज्ञानवादी** = स्वरूप स्थित आत्मा, स्व के विकल्प रहित मात्र ज्ञान स्वरूप रहता है। इस प्रकार के उपदेशक आप है। अत आप को अस्वसवेदितज्ञानवादी कहा जाता है।

८४५ **सत्कार्यवादसात्** = मोक्ष साधक सत् कार्यो का उपदेश देने से आपको सत्कार्यवादसात् कहा जाता है।

८४६ **त्रिप्रमाण** = रत्नत्रय को ही मोक्ष मार्ग मे प्रमाण स्वरूप कहा। इसलिए आप त्रिप्रमाण कहलाते है।

८४७ **अक्षप्रमाण** = (अक्ष) शुद्धात्मा ही प्रमाण स्वरूप बतलाने के कारण आप अक्षप्रमाण कहलाते है।

८४८ **स्याद्वादाहकारिकाक्षदिक्** = सापेक्ष (अहकार) कथन करने का उपदेश दिया। अत आप स्याद्वादाहकारीकाक्षादिक् कहे जाते हैं।

८४९ **क्षेत्रज्ञ** = आप लोकालोक क्षेत्र के और निश्चय से आत्म क्षेत्र के ज्ञाता होने से क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं।

८५० **आत्मा** = आप शुद्धात्म स्वरूप के ज्ञाता होने से/लोकालोक के ज्ञाता स्वभावी होने से आत्मा कहे जाते है।

८५१ **पुरुष** = (पुरु) उत्तम गुणो मे (ष) स्वामी रूप से प्रवर्तन करने से आप पुरुष कहलाते है।

८५२ **नर** = काम अग्नि रहित होने से, न्याय करने से, निर्ग्रन्थ होने से, आप नर कहलाते हैं।

८५३ **ना** = भव्यो को मोक्ष मार्ग पर ले जाते है। अत आप ना कहे जाते है।

८५४ **चेतन** = ज्ञान स्वरूप होने से। अथवा चित् स्वरूप होने से आप चेतन कहे जाते है।

८५५ **पुमान** = स्व-पर को पवित्र करने से आपको पुमान कहा जाता है।

८५६ **अकर्ता** = पर द्रव्यो के कर्ता न होने से। अथवा (अ) परम कल्याण के कर्ता होने से आप अकर्ता कहलाते है।

८५७ **निर्गुण** = द्रव्यत्व स्वभाव के आश्रय रहने से निर्गुण कहलाते है।

८५८ **अमूर्त** = रूप आदि रहित होने से अमूर्त कहलाते है।

८५९ **भक्ता** = परम आनद के भोक्ता होने से आपको भोक्ता कहा जाता है।

८६० **सर्वगत** = ज्ञान अपेक्षा सर्व को जानने से सर्वगत कहलाते हैं।

८६१ **अक्रिय** = मन वचन काय की क्रिया रहित होने से अक्रिय है।

८६२ **दृष्टा** = केवल दर्शन द्वारा सर्व लोकालोक को देखते हैं। इसलिए आप दृष्टा कहलाते है।

८६३ **तटस्थ** = परम उपेक्षा रूप, माध्यस्थ भावो को धारण करने से आप तटस्थ कहे जाते है।

८६४ **कूटस्थ** = शाश्वत स्वभाव मे स्थिर रहने स आप कूटस्थ कहलाते है।

८६५ **ज्ञाता** = केवल ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण विश्व को साक्षीभूत जानते हैं। अत ज्ञाता कहलाते है।

८६६ **निर्बन्धन** = कर्मो के बधन रहित होने से आप को निर्बन्धन कहा जाता है।

८६७ **अभव** = (भव) ससार का अभाव होने से आप को अभव कहा जाता है।

८६८ **बहिर्विकार** = रागादि विकारो को बाहर कर देने से आप बहिर्विकार

कहलाते हैं।

८६९ **निर्मोक्ष** = आत्मा का मोक्ष होना व्यवहार कथन है। आप व्यवहारातीत हैं। इसलिए आपको को निर्मोक्ष कहा जाता है।

८७० **प्रधान** = प्रकृष्ट रूप से मोक्ष के (धान) पात्र/आधार होने से आप प्रधान कहलाते हैं।

८७१ **बहुधानक** = प्रचुर शुद्ध स्वभावी होने से आप को बहुधानक कहा जाता है।

८७२ **प्रकृति** = आप सहज स्वभावी है। इसलिए आप प्रकृति कहे जाते हैं।

८७३ **ख्याति** = वस्तु स्वरूप का यथार्थ निरूपण करने मे प्रख्यात हैं। इसलिए आप को ख्याति कहा जाता है।

८७४ **आरूढप्रकृति** = आप शुद्ध चैतन्य स्वभाव मे आरूढ स्वभावी होने से आरूढप्रकृति कहलाते हैं।

८७५ **प्रकृतिप्रिय** = आप का शुद्ध-बुद्ध स्वभाव तीन लोक को प्रिय है। इसलिए आप प्रकृतिप्रिय कहलाते हैं।

८७६ **प्रधानभोज्य** = शुद्ध चैतन्य मे स्थिर रहने से ज्ञानामृत ही मुख्य भोज्य है। इसलिए आप प्रधानभोज्य कहलाते हैं।

८७७ **अप्रकृति** = कर्मों की सर्व प्रकृतियो से रहित है। अत आप अप्रकृति कहलाते हैं।

८७८ **विरम्य** = आपका शुद्धात्मा ही विशिष्ट रम्य होने से आप विरम्य कहे जाते है।

८७९ **विकृति** = विशिष्ट कृति करने से आप विकृति कहे जाते हैं।

८८० **कृति** = अनत चतुष्टय रूप कृति से विराजमान होने से आप कृति कहलाते हैं।

८८१ **मीमासक** = स्व-पर, अथवा स्व-पर समय की मीमासा/समीक्षा करने वाले होने से आप मीमासक कहलाते हैं।

८८२ **अस्तसर्वज्ञ** = (अस्त) छिपा हुआ, समाप्त, अतीत, अनागत और वर्तमान को एक साथ जानने से अस्तसर्वज्ञ कहलाते हैं।

८८३ **श्रुतिपूत** = (श्रुति) दिव्य ध्वनि द्वारा सर्व जगत् को 'पूत' पवित्र किया। इसलिए श्रुतिपूत कहलाते हैं।

८८४ **सदोत्सव** = आपका सदा ही महापूजन होता है। अत आप सदोत्सव

कहलाते हैं।

८८५ **परोक्षज्ञानवादी** = (परोक्ष) इन्द्रिय ज्ञान आत्म स्वरूप का अनुभव रहित है। अतीन्द्रिय ज्ञान ही आत्मानुभव मे समर्थ है। ऐसा उपदेश देने के कारण आप परोक्षज्ञानवादी कहलाते हैं।

८८६ **इष्टपावक** = (पावक) पवित्र करने वाले पुरुषो मे आप सर्व जगत् को इष्ट हैं। इसलिए इष्टपावक कहलाते हैं।

८८७ **सिद्धकर्मक** = (कर्म) यथाख्यात चारित्र को सिद्ध कर लिया है। अत आप सिद्ध कर्म कहलाते हैं।

८८८ **चार्वाक** = (चार) सर्व जगत् का कर्म मल धोने वाला, आनददायी (आक) आपका ज्ञान है। अत आप चार्वाक कहे जाते हैं।

८८९ **भौतिकज्ञान** = आप के ज्ञान से समवशरण रूप बाह्य लक्ष्मी शोभायमान होती है। इसलिए आपको भौतिकज्ञान कहा जाता है।

८९० **भूताभिव्यक्तचेतन** = सर्व जीवो मे चेतन अभिव्यक्त है। ऐसा उपदेश देने वाले होने से आप भूताभिव्यक्तचेतन कहलाते हैं।

८९१ **प्रत्यक्षैकप्रमाण** = एक केवल ज्ञान ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, ऐसा प्रतिपादन करने से आप प्रत्यक्षैकप्रमाण कहलाते हैं।

८९२ **अस्तपरलोक** = परलोक समाप्त/नही है अर्थात् परलोक है ऐसा सिद्ध करने से अस्त परलोक नाम सार्थक है।

८९३ **गुरुश्रुति** = (गुरु) गोरवशाली, गणधरदेव (श्रुति) दिव्यध्वनि द्वारा शास्त्र रचते है। अत आप गुरुश्रुति कहलाते है।

८९४ **पुरन्दरविद्धकर्ण** = (पुरन्दर) शुद्धात्मा स्वरूप को प्रगट कर (विद्ध) उसी के अनुभवन मे (कर्ण) एकाग्र रहते है। अत पुरन्दरविद्धकर्ण कहलाते है।

८९५ **वेदान्ती** = पूर्ण ज्ञान के धारक/स्त्री पुरुष और नपुसक तीन वेदो का अन्त कर देने से आप वेदान्ती कहलाते हैं।

८९६ **सविद्वयी** = सम विद समीचीन अद्वितीय केवल ज्ञान धारी होने से आप को सविद्वयी कहा जाता है।

८९७ **शब्दाद्वैती** = आप की (शब्द) दिव्य ध्वनि निक्षर, एक रूप, समभाव एव बेजोड़ होने से आपको शब्दाद्वेती कहा जाता है।

८९८ **स्फोटवादी** = रागादि विकारो के चटकने से केवल ज्ञान प्रगट होता है। उस केवल ज्ञान से वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। इसलिए

आप को स्फोटवादी कहा जाता है।

८९९ **पाखडघ्न** = पाखडो को मिटाने के कारण आप पाखडघ्न कहलाते है।

९०० **नयौघयुक्** = नयो के समूह की सापेक्ष प्रकृति की (युक्) समायोजना करने के कारण आपको नयौघयुक कहा जाता है।

: अथअन्तकृत शतक :

९०१ **अन्तकृत्** = ससार का अथवा जन्म मरण का अन्त करने से आप अन्तकृत् कहे जाते है।

९०२ **पारकृत्** = भव समुद्र को पार कर लेने से आप पारकृत् कहलाते है।

९०३ **तीरकृत** = भव सागर का किनारा प्राप्त कर लेने से आप तीरकृत कहलाते है।

९०४ **पारेतम स्थित** = अज्ञान अधकार रहित स्वस्वरूप मे स्थित होने से आप को पारेतम स्थित कहा जाता है।

९०५ **त्रिदडी** = मिथ्या, माया, निदान अथवा मन-वचन-काय इन तीनो का निरोध करने से आप त्रिदडी कहलाते है।

९०६ **दडिताराति** = (आराति) असाता आदि सर्व प्रकृतियो को दडित अर्थात् समूल नाश करने से आप को दडिताराति कहा जाता है।

९०७ **ज्ञानकर्मसमुच्चयी** = ज्ञान और (कर्म) यथाख्यात चारित्र के समुच्चय होने से ज्ञानकर्मसमुच्चयी कहलाते है।

९०८ **सहृतध्वनि** = मोक्ष गमन का समय अल्प रहने पर दिव्य ध्वनि सहृत हो जाती है। अत आप सहृतध्वनि कहलाते है।

९०९ **उत्सन्नयोग** = आपने योगो का (उत्सन्न) नष्ट कर दिया अथवा व्यवहार मे काम नही आते। इसलिए आप उत्सन्नयोग कहे जाते है।

९१० **सुप्तार्णवोपम** = (सुप्त) कल्लोल रहित (अर्णवोपम) समुद्र की उपमा को धारण करने से आप सुप्तार्णवोपम कहलाते है।

९११ **योगस्नेहापह** = मन-वचन-काय के व्यापार रूप योग के स्नेह को दूर करने से योगास्नेहपह कहलाते है।

९१२ **योगकिहिनिर्लेपनोद्यत** = आत्मा मे योग सबधी अशुद्धियो को दूर करने

मे उद्यत होने से आप को **योगकिहिनिर्लेपनोद्यत** कहा जाता है।

९१३ **स्थितस्थूलवपुर्योग** = वादर परमोदारिक काय योग को निवृत किया है। इसलिए आपको स्थितस्थूलवपुर्योग कहा जाता है।

९१४ **गीर्मनोयोगकार्श्यक** = पुन बादर वचन योग और बादर मन योग को कृश करते है। इसलिए आपको गीर्मनोयोगकार्श्यक कहा जाता है।

९१५ **सूक्ष्मवाक्चित्तयोगस्थ** = पश्चात् सूक्ष्म वचन योग और सूक्ष्म मनोयोग मे अवस्थित रहते हैं। इसलिए आपको सूक्ष्मवाक्चित्तयोगस्थ कहा जाता है।

९१६ **सूक्ष्मीकृतवपुक्रिय** = पुन (वपु) औदारिक काय योग को सूक्ष्म करते हैं। अत आपको सूक्ष्मीकृतवपुक्रिय कहा जाता है।

९१७ **सूक्ष्मकायक्रियास्थायी** = औदारिक काय योग को सूक्ष्म करने के अनतर कुछ समय तक आप सूक्ष्म योग मे अवस्थित रहते है। अत आपको सूक्ष्मकायक्रियास्थायी कहा जाता है।

९१८ **सूक्ष्मवाक्चित्तयोगहा** = पुन आप सूक्ष्म वचन योग और सुक्ष्म मनोयोग का विनाश करने से सूक्ष्मवाक्चित्तयोगहा कहे जाते है।

९१९ **एकदण्डी** = जितने समय तक सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान मे अवस्थित रहते है। उतने समय तक सूक्ष्मकाय योग रहने से आपको एकदण्डी कहा जाता है।

९२० **परमहस** = आप उत्कृष्ट (हस) ब्रहम्, परमात्मा, सूर्य, कल्याण स्वरूप, सरक्षक आदि। अथवा स्व-पर विवेकी होने से आप को परमहस कहा जाता है।

९२१ **परमसवर** = आप को कर्मो के आस्रव का सर्वथा निरोध होने से परमसवर कहलाते है।

९२२ **नै कर्मसिद्ध** = आपने सर्व कर्मो का अभाव कर सिद्ध पद प्रगट किया। अत आप को नै कर्मसिद्ध कहा जाता है।

९२३ **परमनिर्जरा** = उत्कृष्ट निर्जरा हो जाने से आप परमनिर्जरा कहे जाते है।

९२४ **प्रज्जवलत्प्रभ** = आपके पास लोकालोक को प्रकाशित करने वाली केवल ज्ञानमयी उत्कृष्ट उज्जवल प्रभा होने से, आप को प्रज्जवलत्प्रभ कहलाते है।

९२५ **मोघकर्मा** = आप सर्वकर्मों को निष्फल/छोडने से माघकर्मा कहे जाते

है।

९२६. **त्रुटत्कर्मपाश** = आपके कर्म बन्धन स्वमेव टूटने से त्रुटत्कर्म कहलाते हैं।

९२७ **शैलेश्यलंकृत** = शील के अट्ठारह हजार भेदो से अलकृत होने से आप शैलेश्यलकृत कहलाते हैं।

९२८ **एकाकाररसास्वादी** = निज शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावरूप ज्ञानामृत रस का आस्वादन करते रहने से, आप एकाकाररसास्वादी कहलाते है।

९२९ **विश्वाकाररसाकुल** = (विश्वाकार) लोकालोक के आकार रूप ज्ञानामृत रस से (आकुल) भरपूर, लीन होने से आप को विश्वाकाररसाकुल कहा जाता है।

९३० **अजीवन** = आप श्वासोच्छवास रूप जीवन रहित होने से आप को अजीवन कहा जाता है।

९३१ **अमृत** = आप मरण रहित होने से अमृत कहलाते है।

९३२ **अजाग्रत** = निद्रा का अभाव होने से अजाग्रत कहे जाते है।

९३३ **असुप्त** = मोह निद्रा से रहित आत्म स्वरूप मे लीन रहने से असुप्त कहलाते हैं।

९३४ **शून्यतामय** = बाह्य व्यापार अथवा मन-वचन-काय के व्यापार शून्य होने से शून्यतामय कहलाते हैं।

९३५ **प्रेयान** = सर्व जगत् प्रिय होने से प्रेयान कहलाते है।

९३६ **अयोगी** = योग रहित होने से अयोगी कहा जाता है।

९३७ **चतुरशीतिलक्षगुण** = आप के चौरासी लाख उत्तर गुण पाये जाते हैं। इसलिए आप को चतुरशीतिलक्षगुण कहा जाता है।

९३८ **अगुण** = वैभाविक गुणो का अभाव होने से आप अगुण कहलाते हैं।

९३९ **नि·पीतानन्तपर्याय** = सर्व द्रव्यो की अविवक्षित अनत पर्यायो को जानने से नि पीतानन्तपर्याय कहे जाते है।

९४० **अविद्यसस्कारनाशक** = अज्ञान जनित अनादि सस्कारो के नाशक होने से, आप अविद्यसस्कारनाशक कहलाते हैं।

९४१ **बृद्ध** = आप अनात गुणो की वृद्धि को प्राप्त होने से बृद्ध कहलाते हैं।

९४२ **अणु** = आपका आत्मा सूक्ष्म होने से। अथवा आत्म प्रदेशो मे ऐन्द्रिज

विभाग न होने से आप अणु कहलाते हैं।

१४३ **अणीयान्** = अणु से भी सूक्ष्म होने से अणीयान् कहलाते हैं।

१४४ **निर्वचनीय** आप निरूक्ति के द्वारा कहने योग्य हैं। अथवा आप निंदा अपवाद रहित हैं। अत· आप निर्वचनीय कहलाते हैं।

१४५ **अनणुप्रिय** = गणधरो के प्रिय होने से अनणुप्रिय कहे जाते हैं।

१४६ **प्रेष्ठ** = तीन लोको के सर्व जीवो को प्रिय होने से प्रेष्ठ कहलाते है।

१४७ **स्थिर** = अयोग केवली गुणस्थान मे प्रदेश परिस्पद रहित होने से आप स्थिर कहलाते हैं।

१४८ **स्थेयान** = शुद्धात्म स्वरूप मे अत्यत स्थिर रहने से स्थेयान कहलाते है।

१४९ **निष्ठ** = आप आत्म स्वरूप मे स्थित, अनुसक्त, लीन/समाये हुए होने से आप निष्ठ कहलाते हैं।

१५० **श्रेष्ठ** = अत्यत प्रशसा योग्य होने से श्रेष्ठ कहलाते हैं।

१५१ **ज्येष्ठ** = ज्ञान अपेक्षा अत्यन्त बृद्ध होने से ज्येष्ठ कहलाते हैं।

१५२ **सुनिष्ठित** = आप आत्मा मे भली प्रकार स्थित होने से सुनिष्ठित कहलाते है।

१५३ **भूतार्थशूर** = परमार्थ स्वरूप की प्राप्ति कर लेने मे समर्थ होने से भूतार्थशूर कहलाते है।

१५४ **भूतार्थदूर** = भूत काल मे भोगे हुए भोगो से दूर होने से आप को भूतार्थदूर कहते है।

१५५ **परमनिगुण** = आप (परम) पूर्ण शुद्ध द्रव्य के (निर्गुण) आश्रय से रहते है। अनत गुणो के पुज है। अथवा रागादि विभाव का पूर्ण अभाव होने से परमनिर्गुण कहलाते है।

१५६ **व्यवहारसुसुक्त** = सासारिक व्यवहार रहित होने से व्यवहारसुसुक्त कहलाते है।

१५७ **अतिजारूक** = शुद्धात्म स्वरूप मे अति सावधान है। अत अतिजागरूक कहलाते हैं।

१५८ **अतिसुस्थित** = आप अपने शुद्ध स्वभाव मे सुस्थित होने से अतिसुस्थित कहलाते हैं।

१५९ **उदितोदितमाहात्म्य** = आपका माहात्म्य उत्तरोत्तर उदित है। अत

आप को उदितोदितमाहात्म्य कहा जाता है।

९६०. **निरुपाधि** = आप सर्व उपाधि रहित हैं। इसलिए आपको निरुपाधि कहा जाता है।

९६१ **अकृत्रिम** = आप अपने सहज स्वाभाविक रूप को प्राप्त हुए हैं। अत आप अकृत्रिम हैं।

९६२ **अमेयमहिमा** = अपरिमेय आत्म महिमामय होने से आपको अमेयमहिमा कहा जाता है।

९६३ **अत्यन्तशुद्ध** = आप द्रव्य कर्म, नोकर्म और भाव कर्म रहित होने से अत्यन्त शुद्ध कहलाते हैं।

९६४. **सिद्धिस्वयवर** = शुद्धात्म स्वरूप की उपलब्धि को स्वय वरण करने से आप सिद्धिस्वयवर कहलाते हैं।

९६५ **सिद्धानुज** = पूर्व सिद्धो की अपेक्षा सिद्धानुज कहलाते हैं। अथवा सिद्धो की अपेक्षा अर्हन्तावस्था मे सिद्धानुज कहलाते हैं।

९६६ **सिद्धपुरीपान्थ** = सिद्धपुरी के आप पथिक होने से सिद्धपुरीपान्थ कहलाते हैं।

९६७ **सिद्धगणातिथि** = सिद्ध समूह के अतिथि होने से आप सिद्धगणातिथि कहलाते हैं।

९६८ **सिद्धसंगोन्मुख** = सिद्धो की सगति के लिए उन्मुख होने से सिद्धसगोन्मुख कहा जाता है।

९६९ **सिद्धालिग्य** = सिद्ध पद मे इन्द्रिय रहित होने से सिद्धालिंग्य कहलाते हैं।

९७० **सिद्धोपगूहक** = सिद्ध पद को आलिंगन करने वाले होने से आपको सिद्धोपगूहक कहा जाता है।

९७१ **पुष्ट** = ज्ञानादि अनत गुणो से पुष्ट होने से आप पुष्ट कहलाते हैं।

९७२ **अष्टादशसहस्रशीश्व** = अट्ठारह हजार शील को धारण करने से अष्टादशसहस्रशीलाश्व कहलाते हैं।

९७३. **पुण्यशवल** = पुण्य का किनारा अर्थात् तीर्थंकर प्रकृति जैसा सर्वोत्कृष्ट पुण्य का विपाक होने से आप पुण्यशवल कहलाते हैं।

९७४ **वृताग्रयुग्य** = आपने मोक्ष गमन हेतु रत्नत्रय रूप (वृत्त) रथ को (अग्र) सर्वोपरि (वृत्त) चुना है अर्थात् उसका सेवन किया, उस पर

आरूढ हुए हैं। अत आप वृताग्रयुग्य कहलाते हैं।

९७५ **परमशुक्ललेश्य** = परम शुक्ल लेश्यापूर्वक अपने अनत गुणो को शुक्ल/निर्मल किया है। अत आप परमशुक्ललेश्य कहलाते हैं।

९७६ **अपचारकृत** = आपने सिद्धालय की ओर (अपचार) प्रस्थान किया। अत आप अपचारकृत कहे जाते हैं।

९७७ **क्षेपिष्ठ** = आप एक क्षण मे लोकाग्र मे विराजते हैं। अत आप क्षेपिष्ठ कहलाते हैं।

९७८ **अन्तक्षणशखा** = (क्षण) कल्याण। आप अतिम निर्वाण कल्याण के शखा हैं। इसलिए आप अन्तक्षणशखा कहलाते हैं।

९७९ **पचलघ्वक्षरस्थिति** = अयोग केवली गुण स्थान मे आप की स्थिति अ इ उ ऋ लृ अक्षरो के उच्चारण काल प्रमाण रहती है। अत आप पचलघ्वक्षरस्थिति कहलाते है।

९८० **द्वासप्ततिप्रकृत्यासी** = आप चौदह मे गुणस्थान के द्वि चरम समय मे अघातिया कर्मों से सम्बधित बहत्तर प्रकृतियो का क्षय करते हैं। इसलिए आपको द्वासप्ततिप्रकृत्यासी कहा जाता है।

९८१ **त्रयोदशकलिप्रणतु** = अयोगी गुण स्थान के अतिम समय मे तेरह (कलि) कर्म प्रकृतियो को (प्रणतु) क्षय करते हैं। इसलिए आप त्रयोदशकलिप्रणतु कहलाते हैं।

९८२ **अवेद** = तीन वेदो से रहित होने से अवेद कहलाते हैं।

९८३ **अयाजक** = अति निस्पृह होने से अयाजक कहलाते हैं।

९८४ **अयज्य** = आप का स्वरूप पूर्ण रूप से पूजा नही जा सकता अत अयज्य कहलाते हैं।

९८५ **अयाज्य** = आप अतीन्द्रि होने से द्रव्य पूजा के योग्य न होने से अयाज्य कहलाते हैं।

९८६ **अनग्निपरिग्रह** = आप पर को ग्रहण रूपी अग्नि से रहित होने से अनग्निपरिग्रह कहे जाते है।

९८७ **अनग्निहोत्री** = आप अग्नि के बिना कर्मों को भस्म करते हैं। अत अनग्निहोत्री कहलाते हैं।

९८८ **परमनिस्पृह** = आप सासारिक सर्व वस्तुओ की इच्छा रहित होने से परमनिस्पृह कहे जाते हैं।

९८९ **अत्यन्त निर्दय** दया रूप रागाश का सर्वथा अभाव होने से

अत्यन्त निर्दय कहलाते है।

९९० **अशिष्य** = आप स्वय बुद्ध होने से किसी के शिष्य नही है। इसलिए आपको अशिष्य कहा जाता है।

९९१ **अशासक** = योग निरोधोपरान्त आप उपदेश नही देते। अत आप अशासक कहलाते है।

९९२ **अदीक्ष्य** = आप किसी से दीक्षा ग्रहण नही करते स्वय दीक्षित होने से अदीक्ष्य कहलाते है।

९९३ **अदीक्षक** = आप कृतकृत्य होने से किसी को दीक्षा नही देते अत अदीक्षक कहलाते है।

९९४ **अदीक्षित** = आप स्वय से दीक्षित होते है। अत अदीक्षित कहे जाते हैं।

९९५ **अक्षय** = आप के शुद्धात्म स्वरूप का कभी क्षय नही होता, अत अक्षय कहलाते है।

९९६ **अगम्य** = आप इन्द्रिय ज्ञान के गम्य न होने से अगम्य कहलाते है।

९९७ **अगमक** = गमनागम रहित होने से अगमक कहलाते है।

९९८ **अरम्य** = आप को अपना शुद्ध स्वरूप रमण के योग्य है किन्तु अन्य जीवो को पूर्ण शुद्ध होने के लिए आपका स्वरूप रमण के योग्य न होने से आप अरम्य है।

९९९ **अरमक** = आप स्व स्वरूप को छोडकर अन्य स्वरूप मे रमण नही करते अत अरमक कहलाते है।

१००० **ज्ञाननिर्भर** = आप ज्ञान से परिपूर्ण भरे है। इसलिए ज्ञाननिर्भर कहे जाते है।

: अन्ताष्टक :

१००१ **महायोगीश्वर** = आप गणधर आदि महायोगियो के ईश्वर होने से महायोगीश्वर कहे जाते है।

१००२ **द्रव्यसिद्ध** = द्रव्य रूप से सिद्ध हो चुकने से आप द्रव्यसिद्ध कहलाते है।

१००३ **अदेह** = पाँच देह रहित होने से आप अदेह कहलाते हैं।

१००४ **अपुनर्भव** = पुन जन्म धारण न करने से आप अपुनर्भव कहलाते हैं।

१००५ **ज्ञानैकचित्** = आप की केवल ज्ञानमय चेतना होने से ज्ञानैकचित् कहलाते हैं।

१००६ **जीवघन** = आप जीव रूप से घन होने से जीवघन कहलाते है।

१००७ **सिद्ध** = आपने अपने शुद्ध स्वभाव को सिद्ध कर लिया है। अत आप सिद्ध कहलाते हैं।

१००८ **लोकाग्रगामुक** = लोक के अग्र भाग मे गमनशील होने से लोकाग्रगामुक कहलाते है।

प्रभु की सौम्य मुद्रा समवशरण मे उपस्थित सभी वर्गों को अपनी ओर आकर्षित किये हुए थी। समस्त श्रोता गण दिव्य देशना श्रवण हेतु लालायित थे। किन्तु पेसठ दिन व्यतीत हो चुके, देशना का लाभ न हुआ। सौधर्म इन्द्र ने अवधि ज्ञान से दिव्य ध्वनि न खिरने का कारण दिव्य ध्वनि श्रवण के योग्य श्रोता की अनुपस्थिति को जाना। जिज्ञासु, श्रतुज्ञान के धारक, ज्ञान की गूढता के ज्ञायक की उपस्थिति मे देशना खिरेगी। अत मुझे गणधर की खोज करना चाहिये। जिस प्रकार तीर्थकर तीर्थ नायक होता है। उसी प्रकार गणधर तीर्थ, दिव्य देशना का व्याख्याता होता है। तीर्थकर प्रभु का गणधर कौन बनेगा और वह अभी कहाँ है? अवधि ज्ञान से ज्ञात हुआ प्रभु का गणधर इन्द्रभूति गौतम बनेगा और वह अभी विशाल यज्ञ का नेतृत्व कर रहा है।

मगध मे इन्द्रभूति गौतम के नेतृत्व मे एक महा यज्ञ का आयोजन चल रहा था। इस अनुष्ठान मे सहस्त्रो विद्वान सम्मिलित हुए थे।

राजग्रह के निकट विपुलाचल पर्वत पर निर्मित समवशरण मे तीर्थंकर महावीर की दिव्य देशना श्रवणार्थ असख्य देव विमानो से पुष्पवृष्टि करते हुए जा रहे थे। गगन मण्डल तीर्थंकर महावीर की जय-जयकार ध्वनि से अनुगुजित था। यज्ञ मण्डप मे उपस्थित विद्वान गण आकाश मार्ग से देवविमानो को आते देख अत्यन्त हर्षित हो उठे। परस्पर मे यज्ञ की अचिंत्य महिमा की वार्ता कर रहे थे। देखो देव गण भी अपने यज्ञ मे सम्मिलित होने आ

रहे हैं। किन्तु सभी देवविमान यज्ञ मण्डप के ऊपर से निकल कर विपुलाचल पर्वत की ओर चले गए, जहाँ तीर्थंकर महावीर का समवशरण लगा था। यह दृश्य देख यज्ञ मण्डप में उपस्थित सभी विद्वान आश्चर्य चकित हो गये। इन्द्रभूति ने देवविमानो को उतारने/आह्वानन् हेतु वेद मत्रोचार पूर्वक तुमुलनाद किया। किन्तु एक भी विमान यज्ञ मण्डप मे न आया। उसका मन उदास हो गया। इसी समय सौधर्म इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर इन्द्रभूति के पास उपस्थित हुआ और उसके ज्ञान की प्रशसा कर कहने लगा - मैं एक गाथा का अर्थ समझने हेतु आपके पास आया हूँ। आप आज्ञा दे तो मैं वह गाथा कहूँ। इन्द्रभूति ने भेषधारी इन्द्र के विनीत भावो से प्रसन्न हो कर कहा - कहो वह कौन सी गाथा है। मैं तुम्हे अवश्य समझाऊँगा। भेषधारी इन्द्र ने तब गाथा कही -

पचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पच।
अट्ठयपवयणमादा सहेउओ बध मोक्खो य।१।
त्रैकाल्य द्रव्यषटक नवपदसहित जीवषटकाय लेष्या
पचान्ये चास्तिकाया व्रतसमिति गतिज्ञान चारित्रभेदा।२।

इन्द्रभूति बहुत समय तक गाथा का अर्थ सोचता रहा, किन्तु गाथा का अभिप्राय समझ मे न आया। वह विचार करने लगा। मैंने तो अभी तक इस प्रकार की गाथा पढ़ी नही और कभी इस ओर ध्यान भी नही गया। उसने भेषधारी इन्द्र से कहा - आपने यह गाथा कौन से गुरु से सीखी है? तब इन्द्र ने कहा - मैंने यह गाथा अपने गुरु तीर्थंकर महावीर से सींखी है। पर वे कई दिनो से मौन हैं। मैंने आपके प्रखर ज्ञान की महिमा पूर्व से सुन रखी थी। इसलिए मैं गाथा का अभिप्रायात्मक अर्थ समझने आपके पास चला आया हूँ।

इन्द्रभूति पाँच अस्तिकाय, छ जीव निकाय, आठ प्रवचन मात्रिकाओ आदि का अभिप्राय न समझ सका। वह मन ही मन विचारने लगा तीर्थंकर महावीर कितने महान ज्ञान धारी हैं जिन्होने यह गाथा कही है, और मैं

---

२ त सू श्रुत भक्ति
१ षटखण्डागम धवला पु ९ पृ १२९ में उद्धृत

कितना अज्ञ हूँ जो इस गाथा का अर्थ भी समझ न सका।

मौंन गुरु से विवाद करने और जिस गुरु की गाथा का अर्थ समझ न सका उस ही गुरु को समझाने हेतु जाने का औचित्य ही नहीं बैठता। उसके भद्र परिणामो मे विचार आया कि ऐसे महान गुरु के दर्शन अवश्य करना चाहिए। इन्द्रभूति ने भेषधारी इन्द्र से बोला - मैं तुम्हारे गुरु के दर्शनार्थ चलना चाहता हूँ। इन्द्र अति प्रसन्न हो कहने लगा चलिए

समवशरण मे प्रवेश कर मानस्तम्भ के दर्शन से मिथ्या ज्ञान चूर-चूर हो गया और आत्म ज्ञान प्रकाशित होने लगा। गध कुटि के दर्शन से श्रद्धा निर्मल हो गयी। तीर्थंकर महावीर के दर्शन करते ही आत्मदर्शन हो गया। उसे निर्ग्रन्थ बनने का भाव उमड़ पड़ा। उसने तत्काल तीर्थंकर प्रभु से पाँच सौ शिष्यो सहित जैनेश्वरी दिगम्बर दीक्षा अगीकार कर ली। दीक्षा लेते ही मन पर्यय ज्ञानी हो गया। यह दिन आषाढ शुक्ल पूर्णिमा का था। जो आज भी गुरु पूर्णिमा के नाम से प्रचलित/प्रसिद्ध है।

इन्द्रभूति के गणधर बनने के पश्चात् क्रमश वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौन्द्र पुत्र, मैत्रेय, अकम्पन, अन्धवेला और प्रभास इस प्रकार ग्यारह गणधर बने।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन ब्राह्म मुहूर्त मे तीर्थंकर महावीर की दिव्य देशना खिरी। यह दिन धर्म तीर्थ की उत्पत्ति का दिन माना जाता है। वीर शासन जयति के नाम से प्रचलित हैं।

एक जिनस्थावर प्रतिमा के अतिशय रूप दर्शन का फल

एक हजार अतिशयवान मिथ्यादृष्टि समान एक जैनाभास, एक हजार जैनाभास समान एक सम्यग्दृष्टि, एक हजार सम्यग्दृष्टि समान एक अणुव्रती, एक हजार अणुव्रती समान एक सकलव्रती मुनि, एक हजार मुनि समान एक सामान्य केवली, एक हजार सामान्य केवली समान एक तीर्थंकर केवली, एक हजार तीर्थंकर केवली समान एक जिनस्थावर प्रतिमा के अतिशय रूप दर्शन का फल जानना।

(ब्र रायमल्ल कृत - चर्चा सग्रह)

दिव्य ध्वनि

हे भव्य आत्मन्! किसी भी प्रकार पर द्रव्यो के सयोग सम्बन्धी सयोगी भावो को छोड़कर आत्म हित बुद्धि कर। एक मुहूर्त शरीर को पडौसी मान और अपने शुद्ध स्वभाव मे विलास कर। जिससे तेरे एकत्वरूप मोह का अभाव हो। ज्ञानानद स्वरूप आत्म स्वरूप का उदय होगा।[1]

•

अरहतो के द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व के समान ही सभी जीवो का द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व है। चेतन का परिणमन चेतनरूप, ज्ञान का परिणमन ज्ञान रूप होता है। अन्य रूप नही होता है। इसलिए द्रव्यत्व गुणत्व और पर्यायत्व की अपेक्षा सभी जीवो मे अभेदता है। इस प्रकार अरहतो के द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व और अन्य जीवो के द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व मे समानता समझना मोह क्षय का उपाय है।[2]

आत्मा मे रत्नत्रय की प्रगटता परमात्म तत्व के आश्रय से होती है। प्रत्येक आत्मा नित्य, निरजन, निर्विकार, विज्ञान घन, टकोत्कीर्ण सदा एक रूप रहने वाला है। द्रव्यत्व, गुणत्व पर्यायत्व, उत्पादत्व, व्ययत्व, और ध्रौव्यत्व की एकता परमात्मत्व है। जो कि शुद्ध निरावरण एक रूप सुख समुद्र, चारित्र का मूल, मुक्ति का कारण है।

जीव आदि छ द्रव्यो से व्याप्त लोक है। धर्म आदि चार द्रव्य स्वभाव रूप ही परिणमन करते हैं। जीव पुद्‌गल के स्पर्श आदि गुणो मे मोहित हो राग-द्वेष रूप परिणमन करता है, तब वह कर्म बध की श्रृखला से वेष्ठित होता है और जब वह राग द्वेष रूप परिणमन नही करता। तब कर्म बध नही होता। जीव के कर्म बध होने से वह पर समय और कर्म बध न होने से स्व समय होता है। अथवा पर्यायो मे लीन पर समय, स्वभाव मे लीन स्व समय है।[3]

शुद्ध नय अपेक्षा आत्मा का ज्ञायक स्वभाव अबध, अस्पर्श, अनन्यत्व,

---

१ (स सा क २३), २ (प्र सा गा ८०) ३ (प्र सा ९३ ९४)

नियत, अविशेष है। वह न प्रमत्त है और न अप्रमत्त।[1] किसी लिंग से ग्रहण नही होता है। अनुभवन के लिए ऐसी प्रतीति कर कि चित् स्वभाव सदैव एक, शुद्ध दर्शन ज्ञान मय अरूपी अन्य पर द्रव्यो से सर्वथा पृथक् हैं।[2] एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता-भोक्ता नही है। जो कर्ता है वह ज्ञायक नही होता और जो ज्ञायक होता है वह कर्ता नही होता है। आत्मा को कर्मो का और कर्मो को आत्मा का कर्त्ता कहना उपचार कथन है।

पुण्य-पाप कर्मों के फलो का भोक्ता आत्मा नही है। वह मात्र उसके फलो से शोभित होता है। जिस प्रकार वृक्ष फलो से शोभित होता है। वह स्वय फलो को भोगता नही है। कर्मो का विपाक पुद्गल का होने से उसके फल पुद्गल मे ही आते हैं। चैतन्य स्वभाव मे इनका प्रवेश नही है। अत उनके फलो को भोगता नही है। कर्मो के आस्रव, बध एव उदय सम्बन्धी भाव अज्ञान जन्य है, पौद्गलीक है और चित् स्वभाव से सर्वथा पृथक् है।

पुण्य-पाप कर्मो का चित् स्वभाव से पृथक् रहने रूप ज्ञान शुद्धात्म स्वरूप की अनुभूति कराता है। जो सवर निर्जरा स्वरूप है। चैतन्य से भिन्न लक्षण वाले सर्व भाव आत्म स्वरूप नही होते हैं। ज्ञान स्वभावी आत्मा के ज्ञान मे द्रव्यो के तत्-अतत्, एक अनेक, सत्-असत्, नित्य अनित्य आदि भाव प्रति फलित होते है। इसलिए ज्ञान की प्रसिद्धि से आत्मा की प्रसिद्धि होती है।

हे भव्य आत्मन्! शास्वत सुखी होने का उपाय निज शुद्ध कारण परमात्मा का आश्रय है। साधु पद से लेकर सिद्ध पद तक सभी अवस्थाएँ उसमे समाहित हैं। चित् स्वभाव ही सुख स्वरूप है ऐसा मानना सम्यक दर्शन सम्यज्ञान और ऐसा ही सदैव मानते और जानते रहना सम्यक चारित्र है। जो सुखी होने का कारण है।

जीव आदि सात तत्व बाह्य तत्व होने से, हेय हैं। मात्र अपँना चित् स्वभाव उपादेय है। निर्मोह भाव से उसी का अनुभव करना चाहिये। जोकि निर्दण्ड, र्निद्वन्द, निर्मम, निर्मद, नि राग, नि शल्य, निष्कषाय, निराग,

---

१ (स सा ६), २ (स सा ३८)

निर्दोष, निर्मूढ, निर्ग्रन्थ और निकल है।[1] जिस प्रकार सिद्ध परमात्मा शुद्ध है उसी प्रकार भव लीन ससारी आत्माएँ द्रव्यत्व आदि की अपेक्षा विशुद्ध है।[2]

प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सयुक्त है, वह सत् है। सत् द्रव्य का लक्षण है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समय एक है। ये लक्षण भेद से तीन पर्याये हैं।[3] इनकी परम्परा अविनाशी है।

प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व दो प्रकार का है - १ स्वरूप अस्तित्व २ सादृश्य अस्तित्व। प्रत्येक द्रव्य को इतर द्रव्यो से पृथक् कर स्वतत्र अस्तित्व का प्रयोजक स्वरूप अस्तित्व है। नाना द्रव्यो मे अनुगत व्यवहार करने वाला सादृश्य अस्तित्व है।

जीवो चरित्त दसणणाणठिदो त हि ससमय जाणे।
पोग्गल कम्मपदेसट्ठिद च त हि जाण परसमय।।२।। स. सा

अर्थ - जो जीव शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्र मे स्थित है, उसे निश्चय से स्व समय जानो। जो जीव पौद्गलिक कर्म प्रदेशो मे स्थित है उसको पर समय जानो।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोगे।
बध कहा एयत्ते विसवादिणी हो दि।।३।। स सा

अर्थ - एकत्व निश्चय को प्राप्त शुद्ध आत्मा ही लोक मे सर्वत्र सुन्दर है। इस लिए एकत्व मे बध की कथा विसवाद करने वाली है।

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेस।
अपदेस सत मज्झ जिण सासण सव्व।।१५।। स सा

अर्थ - जो भव्य आत्मा। आत्मा को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष,

---

१ (नि सा ४३,४४), २ (नि सा ४८) ३ (प्र सी १०१)

निरश, अखण्ड एवं परम शान्त भाव स्थित आत्मा मे देखता है, जानता है, अनुभव करता है, वही आत्मा सम्पूर्ण जिन शासन को जानता है।

दसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि णिच्च।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाण चेव णिच्छयदो।।१६।।

अर्थ - साधु को दर्शन, ज्ञान, और चारित्र की सदैव उपासना करना चाहिये। उन तीन को निश्चयनय से एक आत्मा ही जानो।।१६।। स सा

जो इदिये जिणित्ता णाणसहाबाधिय मुणदि आद।
त खलु जिदिंदिय ते भणति जे णिच्छिदा साहू।।३१।। स सा

अर्थ - जो इन्द्रियो को जीत कर ज्ञान स्वभाव से अधिक शुद्ध ज्ञान चेतना गुण से परिपूर्ण आत्मा को जानता है, अनुभव करता है उस पुरुष को जो निश्चय मे स्थित साधु है वे उसे वास्तव मे जितेन्द्रिय कहते हैं।

अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द।
जाण अलिंगग्गहण जीवमणिदिदट्ठ सठाण।।४९।। स सा

अर्थ - जो रस, रूप, गध रहित है, इन्द्रियो के अगोचर हैं, चेतना गुण से युक्त है, शब्द रहित हैं, किसी चिन्ह या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नही होता, जिसका आकार बताया नही जा सकता उसे जीव जानो।

कम्मस्स य परिणाम णो कम्मस्य य तहेव परिणाम।
ण करेदिएदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणि।।७५।। स सा

अर्थ - जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को इसी प्रकार नो कर्म के परिणाम को नही करता अपितु जानता है वह ज्ञानी है।

मोत्तूण णिच्छयट्ठ ववहारे ण विदुसा पवट्ठति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि।।१५६।। स सा

अर्थ - निश्चय नय के विषय को छोड़ कर विद्वान् व्यवहार मे प्रवर्तन नही करते। निज शुद्ध आत्मभूत परमार्थ के आश्रित यतियो को ही कर्मो का क्षय होता है।

सुद्ध तु वियाणतो विसुद्धमेवप्पय लहदि जीवो।
जाणतो दु असुद्ध असुद्धमेवप्पय लहदि ।।१८६।। स सा

अर्थ - शुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव आत्मा को ही प्राप्त करता है और अशुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

बधाण च सहाव वियाणिदु अप्पणो सहाव च।
बधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खण कुणदि।।२९३।। स सा

अर्थ - बधो के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जान कर जो पुरुष बधो के प्रति विरक्त होता है। वह कर्मो से मुक्त होता है।

ण वि कुव्वदि ण वि वेददि णाणि कम्मइ बहुप्पयाराइ
जाणदि पुण कम्मफल बध पुण्ण च पाव च।।३१९।। स सा

अर्थ - ज्ञानी बहुत प्रकार के कर्मो को न तो करता है, न भोगता हैं। किन्तु वह पुण्य-पाप रूप कर्म बध को और कर्म फल को मात्र जानता है।

जम्हा जाणदि णिच्च तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी।
णाण च जाणयादो अव्वदिरित्ति मुणेदव्व।।४०३।। स सा
णाण सम्मादिट्ठी दु सजम सुत्तभग पुव्वगद।
धम्माधम्म च तहा पव्वज्ज अब्भुर्वेत्ति बुहा।।४०४।।

अर्थ - क्योकि जीव सदा जानता है, इसलिए ज्ञायक जीव ज्ञानी है और ज्ञान ज्ञायक से अभिन्न है, ऐसा जानना चाहिए। ज्ञानी जन (गणधर

देव) ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, संयम, अगपूर्वगत, सूत्र, धर्म, अधर्म तथा दीक्षा मानते है।

चारित्र खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्त णिदिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणाओ अप्पणो हु समो।। (७ प्र सा)

अर्थ - चारित्र वास्तव मे धर्म है, जो धर्म है वह साम्य है। साम्य मोह क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम है।

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्ध सपयोग जुदो।
पावदि णिव्वाण सुह सुहोव जुत्तो य सग्गसुह।।११।। प्र सा

अर्थ - धर्म से परिणित आत्मा यदि शुद्धोपयोग युक्त हो तो मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। यदि शुभोपयोग युक्त हो तो स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है।

आदा णाणपमाण णाण णेयप्पमाणमुद्दिट्ठ।
णेय लोयालोय तम्हा णाण तु सव्वगय।।२३।। प्र सा

अर्थ - आत्मा ज्ञान प्रमाण है ज्ञान ज्ञेय प्रमाण कहा गया है। ज्ञेय लोकालोक है। इसलिए ज्ञान सर्वगत है।

सपर बाधासहिद विच्छिण्ण बधकारण विसम।
ज इन्दिएहिं लद्ध त सोक्ख दुक्खमेव तहा।।७६।।
ण हि मण्णदि जो एव णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाण।
हिडदि घोरमपार ससार महोसछण्णो।।७७।।

अर्थ - जो इन्द्रियो से प्राप्त सुख है वह बाधा सयुक्त है विच्छिन्न है, बध का कारण है, विषम है। इस प्रकार वह दु ख ही है। इस प्रकार पाप और पुण्य मे अन्तर नही है। ऐसा जो नहीं मानता वह मोह से आच्छादित होता हुआ घोर अपार ससार मे परिभ्रमण करता है।

जो जीवो भावतो ज़ीव सहाव सुभावसजुत्तो।
सो जरामरणविणास कुणइ फुड लहइ णिव्वाण।।६१।। भा पा

अर्थ - जो भव्य पुरुष जीव को भाता हुआ भले भाव से सयुक्त हुआ जीव के स्वभाव को जानकर भावे वह जरा मरण का विनाश कर निर्वाण सुख को प्राप्त करता है।

अप्रतिबुद्ध जीव स्व से सर्वथा सर्वप्रकार भिन्न शरीर आदि पर द्रव्य एव पर भावो को अपना मानता है। उसे आचार्य देव करुणा कर समझाते हैं कि - जड़ और चेतन द्रव्य कभी भी एकत्व को प्राप्त नही हो सकते हैं। हे भव्य पर द्रव्यो को अपना मानना छोड़ दे। अप्रयोजनीय मान्यता से कोई लाभ नही है।

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्व कौतूहली सन्
अनुभव भवमूर्ते पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्
पृथगथ विलसन्त स्व समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्व मोहम् ।।२३।। स सा क

श्लोकान्वयार्थ

(अयि) हे भव्य आत्मन् (कथमपि) किसी भी प्रकार/उपाय से (मृत्वा) मरकर के अर्थात् मरणोपरान्त पूर्व विस्मृति की भाति (तत्व) प्रयोजन भूत सात तत्वो/शुद्ध चेतन स्वरूप निज आत्मा को (कौतूहली) जिज्ञासा/रूचि, उत्सुकता से (सन्) प्राप्त करने/अधिगत करने के लिए (मुहूर्तम) एक मुहूर्त के लिए (मूर्ते) शरीर आदि मूर्त द्रव्यो का (पार्श्ववर्ती भव) पड़ौसी बन कर (अथ) अब (येन) जिससे (पृथक्) भिन्न (स्व विलसन्त) निज आत्म विलास को (समालोक्य) सम्यक प्रकार देख कर (अनुभव) साक्षात/प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा तद्रूप परिणमन करने से (मूर्त्या) मूर्त द्रव्यो के (साकम्) साथ (एकत्व मोहम्) एकत्व रूप मोह भाव को तू (झगिति) शीघ्र ही (त्यजसि) छोड़ देगा।

श्लोकार्थ - हे भव्य आत्मन्। किसी भी प्रकार सयोगी सम्बधो को मरणोपरान्त अतीत के विस्मरण की भांति विस्मृत कर निज शुद्धात्म तत्व

प्राप्त करने की रूचि कर के। अब एक मुहूर्त मात्र के लिए शरीर का पड़ौसी बन जा, और शरीर से भिन्न शुद्धात्म विलास को सम्यक प्रकार स्वय देखकर उसका तद्रूप मे अनुभव कर। ऐसा करने पर शरीर के साथ जो तेरा एकत्व रूप मोह भाव है, उसे तू शीघ्र ही छोड़ देगा।

भावार्थ :-

आचार्य देवने अप्रतिबुद्ध जीवो को चैतन्य स्वभाव प्रतिबोध कराने के लिए "अयि" का प्रयोग किया है। यह अव्यय बहुत प्रिय एव कोमलता के लिए प्रयुक्त होता है। सस्कृत साहित्य मे उसका प्रयोग "अयि कोमलालापे" पक्ति द्वारा कोमल, प्रिय सम्बोधन मे किया है। यह सम्बोधन लोक मे भी अपने मित्रो के प्रति विनम्र अनुरोध करने के लिए प्रयुक्त होता है।

आचार्य देव मर्म स्पर्शी कोमल शब्दो मे सम्बोधन करते है कि हे भव्य आत्मन्! वर्तमान सम्बधी चेतन, अचेतन एव तद्जन्य भावो को ऐसा विस्मृत करो जैसा मरणोपरान्त अतीत सम्बधी देहादिक की विस्मृति हो जाती है। बाह्य द्रव्यो से इस प्रकार की विस्मृति कर एक मुहूर्त के लिए शरीर का पड़ौसी बन कर एक बार पर से भिन्न अपने चित् स्वभाव को पसन्द कर एव रूचि पूर्वक, उत्सुकता से उसकी पूजा करो। उसे प्राप्त करो त्रैकालिक सहज चैतन्य स्वभाव को समझने पर ही अतीन्द्रिय आनद प्रगट होता है। उसके प्रगट होने पर तुम शरीर आदि मे एकत्व रूप मोह भाव को शीघ्र छोड़ दोगे।

हे भव्य तू ससार शरीर सम्बधी विषयो का अनादि से कौतूहली बना रहा। तुझे उसका फल ससार रूप दु ख ही मिला है। अतीन्द्रिय आनद की प्राप्ति न हो सकी। तत्वो का कौतूहली बन उस से ही तुम्हारा कल्याण होगा।

चेतन स्वभावी भगवान् आत्मा और अचेतन स्वभावी मूर्त शरीर आदि के स्वरूप का भेद विज्ञान करो। शरीर आदि मूर्त द्रव्यो से भिन्न निज चैतन्य स्वभाव रूप विलास का अनुभव करके देखो। वह ज्ञान सुख आदि अनंत गुणात्मक है। आत्मा चैतन्य का अन्वय, विशेष और व्यतिरेक रूप स्वरूप

अस्तित्व लिए हुए चेतनत्व स्वरूप से उत्पाद-व्यय ध्रौव्य रूप है। आत्मा का विलास शरीर आदि से भिन्न वर्तता है। शरीर अचेतन स्वरूप अस्तित्व लिए है। इस प्रकार का भेद विज्ञान करने से ही आत्म कल्याण होता है। अथवा पर से एकत्व भाव छूटता है।

बाह्य सर्व सम्बधो को पूरी तरह विस्मृत करो। अब एक बार मूर्त द्रव्यो का पड़ौसी बन कर, मान कर, जान कर, पड़ौसीवत् ही रहो। जिस प्रकार पड़ौसी को अपना नही माना जाता और उससे अभद्र व्यवहार भी नही किया जाता ठीक उसी प्रकार देह रूपी पड़ौसी मे एकत्व बुद्धि नही करना, और उसके प्रति असद् व्यवहार भी नही करना। शरीर आदि का साथ होते हुए भी इससे भिन्न अपने चैतन्य स्वभाव का अनुभव करके देखो। तुम्हे शास्वत सुख की सिद्धि होगी। तुम्हारी दिशा और दशा दोनो ही बदल जायेगी। तुम अवश्य ही शरीर आदि से एकत्व रूप मोह भाव को शीघ्र ही छोड़ दोगे।

आचार्य देव ने समयसार कलश सख्यक तेईस मे प्रथम चरण का आरम्भ 'अयि' और द्वितीय चरण का आरम्भ अथ से किया है। साहित्य मे अयि का प्रयोग करुण रस मे और अथ का प्रयोग शात रस एव कार्यारम्भ मे किया जाता है। प्रथम अव्यय द्वारा भव्यो को कोमल सम्बोधन किया है। द्वितीय अव्यय द्वारा नया जीवन आरम्भ करने की प्रेरणा दी है। हे भव्य बाह्य सर्व सम्बधो को विस्मृत कर एक क्षण के लिए शरीर का पड़ौसी बन कर निज आत्मानुभव करो। तुम स्वय ही शरीर आदि के प्रति एकत्व रूप मोह भाव को छोड़ दोगे।

करुण रस के साथ प्रयुक्त 'मृत्वा' क्रिया भाव साधन प्रधान क्रिया है। भाव साधन मे इसका अर्थ मरणोपरान्त अतीत की विस्मृति है। इससे स्पष्ट होता है कि शरीर आदि के सम्बधो को अतीत वत् विस्मृत कर तत्व कौतूहली बनना आचार्य देव का अभिप्राय है। इस का अर्थ - मर करके, महा कष्ट से, प्राणो की बाजी लगाकर आदि अर्थो से तत्वोन्मुखी होने का अधिक बल दिखाई देता है। किन्तु आचार्य देव का पूर्ण अभिप्राय प्रगट नही हो पाता है। यदि आ देव को मात्र कौतूहली बनाने का अभिप्राय होता तो 'मृत्वा' के स्थान पर 'कृत्वा' क्रिया का प्रयोग करते।

इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आ देव अप्रतिबुद्ध को कोमल सम्बोधन द्वारा समझाते हैं कि बाह्य सर्व सम्बधों को पूर्णत विस्मृत कर शरीर को पड़ौसी समझो। एक मुहूर्त के लिए अब निज स्वभाव का अनुभव करो। तुम शरीर आदिक सर्व सम्बधो मे अपनत्व मानना इस प्रकार छोड़ दोगे जिस प्रकार पुत्री पति का घर पाने पर पिता के घर से अपनत्व छोड़ देती है। पुत्री को पिता के घर मे विवाह के पूर्व अपनत्व रहता है। विवाहोपरान्त उसे पति के घर मे अपनापन लगता है। तब वह पिता के घर से अपनत्व भाव स्वय छोड़ देती है। उसी प्रकार आत्मपरिणति को शरीर आदिक सम्बध मे एकत्व भासित होता है। जब बाह्य सर्व सम्बधो को विस्मृत कर स्वानुभव रूप परिणमन करती है तब वह शरीर आदि के प्रति का एकत्वरूप मोह भाव शीघ्र ही छोड़ देती है।

- o - o - o -

अयोग केवली

जब सयोग केवली जिन की आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण शेष रह जाती है तब वे योग निरोध करके अयोग केवली गुण स्थान मे प्रवेश करते हैं। योग निरोध के कारण नवीन कर्म बध से रहित होते हैं। तथा आत्म प्रदेशो के निष्कम्प हो जाने से शैल वत् अचल, स्थिर, शान्त दशा को प्राप्त हो जाते है। इस गुण स्थान का काल अ, इ, उ, ऋ, लृ इन ह्रस्व स्वरो के उच्चारण जितना है। जब इस स्थान का काल दो समय शेष रह जाता है। तब अनुदय रूप वेदनीय कर्म की कोई एक, देवगति, ५ शरीर, ५ सघात, ५ बधन, ६ सस्थान, ३ आगोपाग, ६ सहनन, ५ वर्ण, २ गध, ५ रस, ८ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त, विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, सुस्वर, अनादेय, अयश कीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र इन ७२ प्रकृतियो का एक साथ क्षय हो जाता है। तत्पश्चात् अतिम समय मे उदयगत वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्य गति, पचेन्द्रिय जाति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति, उच्च गोत्र, तीर्थंकर प्रकृति इस प्रकार १३ प्रकृतियो का क्षय कर सर्व कर्मो से मुक्त होते हुए परिनिर्वाण पद को प्राप्त हो जाते हैं।

- o - o - o -

मोक्ष

शुद्ध आत्म स्वरूप की साधना द्वारा समस्त कर्म मल (अष्टकर्म) कलक (राग-द्वेष) और शरीर को अपने से सर्वथा पृथक् कर अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञान आदि गुण और अव्याबाध सुख रूप अवस्था का नाम मोक्ष है।[1]

मोक्ष का व्युत्पत्ति अर्थ - मोक्ष शब्द "मोक्षण मोक्ष" इस का अर्थ क्रिया प्रधान भाव साधन है। यह असने धातु से निष्पन्न है। बध के अभाव से स्वतत्र होकर आत्मा आत्यन्तिक ज्ञान, दर्शन रूप अनुपम सुख का अनुभव करता है।[2]

सिद्ध परमात्मा त्रिलोक चूडामणि हो निरजन, निर्विकार, विज्ञान घन सुख सागर मे सदैव निमग्न रहते हैं। किंचित न्यून पुरुषाकार होने पर भी गुणो से पुरुष के समान नही है। पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रयो के विषयो को भिन्न देश मे जानता है। किन्तु सिद्ध परमात्मा प्रति प्रदेश मे सर्व विषयो के ज्ञायक हैं।[3]

मोक्ष होने पर जीव इस लोक को छोड़कर परलोक मे जाता है। परलोक का वाच्यभूत अर्थ आत्म ध्यान मे जाता है। काय के मोक्ष भूत परलोक मे नही [4] देवाधिदेव व्यवहार से लोकाग्र मे स्थित रहते हैं और निश्चय से निज शुद्ध आत्मा मे ज्यो-के-त्यो अत्यन्त अविचल रूप मे रहते हैं।[5]

जो आत्मा मोक्षरूप निराकुलता मय सुख का अनुभव करता है वह पुन आकुलता मय ससार मे लौट कर नही आता। ऐसा कौन बुद्धिमान है जो सुखद स्थान को छोड़कर दु खद स्थान मे आकर रहेगा। जिस प्रकार कीट से विमुक्त किया गया स्वर्ण पुन कीट युक्त नही होता उसी प्रकार कर्म मल से मुक्त हुआ आत्मा पुन कर्म मल युक्त नही होता है। अष्ट कर्मों के क्षय से आत्मा मे क्षायिक सम्यक्त्व, अनत ज्ञान, अनत दर्शन,

---

१ (स सि १ उत्थानिका), २ (रा वा १/४ घ १३/५ न च वृ १५९ प का मू २८), ३ (ध १/११ गा २६-२८), ४ (प प्र टी २/४), ५ (नि सा ता वृ १७६)

अनत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबधत्व और पॉच क्षायिक लब्धियाँ प्रगट हो जाती है।

कर्म मलो से मुक्त होने पर आत्मा चित् स्वरूप रहता है। जीव मे पाये जाने वाले एक भी लक्षण उनमे दिखाई नही देता है। धवलाकार ने लिखा भी है "सिद्धा ण जीवा"

मुक्त आत्माएँ, क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बोधित, बुद्ध बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अतर, सख्या और अल्प-बहुत्व के द्वारा विभाग किया जाता है। वस्तुत उनमे भेद नही होता है।

क्षेत्र अपेक्षा वर्तमान ग्राही नय से जीव सिद्ध क्षेत्र मे/अपने प्रदेश मे/ आकाश प्रदेश मे सिद्ध होता है। अतीत ग्राही नय से जन्म अपेक्षा पन्द्रह कर्म भूमियो मे और सहरण की अपेक्षा मनुष्य क्षेत्र मे सिद्ध होता है।[1]

काल अपेक्षा वर्तमान ग्राही नय से एक समय मे सिद्ध होता है। अतीत ग्राही नय से उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे जन्मा सिद्ध होता है। विशेष रूप से अवसर्पिणी काल मे, सुषमा-दु षमा के अन्त भाग मे और दु षमा-सुषमा मे उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है। सहरण की अपेक्षा उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी के समयो मे सिद्ध होता है।[2]

वर्तमान ग्राही नय के आश्रय से सिद्ध गति से सिद्ध होता है। भूत ग्राही नय से मनुष्य गति से सिद्ध होता है।

वर्तमान ग्राही नयापेक्षा मनुष्य निर्ग्रन्थ लिग से मुक्त होता है और भूत ग्राही नयापेक्षा से तीन भाव वेदो से मुक्त होता है।

तीर्थ सिद्ध दो प्रकार के होते हैं। १ तीर्थंकर सिद्ध २ इतर सिद्ध। इतर सिद्ध दो प्रकार के होते हैं - कितने ही जीव तीर्थंकर के सद्भाव मे सिद्ध होते हैं। कितने ही जीव तीर्थंकर के अभाव मे सिद्ध होते हैं।[3]

---

१ (१ त सू १/९) २ (स सि /रा वा १०/९), ३ (स सि १०/९)

आत्मा सिद्ध न चारित्र से होता है और न अचारित्र से। भूतपूर्व नय से अनतर की अपेक्षा एक यथाख्यात चारित्र से सिद्ध होता है। और व्यवधान की अपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि सहित पाँच चारित्रो से सिद्ध होता है।[१]

कुछ प्रत्येक बुद्ध सिद्ध होते हैं। जो परोपदेश बिना स्व शक्ति से ज्ञानातिशय प्राप्त कर सिद्ध होते हैं। कुछ बोधित बुद्ध होते हैं। जो परोपदेश पूर्वक ज्ञानातिशय प्राप्त कर सिद्ध होते हैं।

ज्ञान अपेक्षा प्रत्युत्पन्न नयपेक्षा एक ज्ञान से मुक्त होते है। भूत नयापेक्षा मति-श्रुत, मति-श्रुत-अवधि अथवा मति-श्रुत-अवधि और मन पर्यय सहित चार ज्ञान से मुक्त होते है।

आत्म प्रदेशो मे व्याप्त कर के रहना अवगाहना है। वह जघन्योत्कृष्ट के भेद से दो प्रकार की है। मध्य के अनेक भेद हैं। किसी एक अवगाहना से मुक्त होते हैं।

मोक्ष जाने का जघन्य अन्तर दो समय और उत्कृष्ट अन्तर आठ समय है। अथवा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छ माह है।

जघन्य रूप से एक समय मे एक जीव मुक्त होता है और उत्कृष्ट रुप से एक समय मे एक सौ आठ जीव मुक्त होते हैं।

- o - o - o -

भगवन्तो की भक्ति से, हो जाऊँ भव पार ।
क्योकि इसी की शक्ति से, मिलता निज आधार ।।

---

१ (रा वा १०/९)

सिद्धों का सुख

सुख दो प्रकार का होता है - (१) लौकिक (२) अलौकिक। लौकिक सुख इन्द्रिय विषय जनित होने से सर्व जन परिचित है। अलौकिक सुख अतीन्द्रिय होने से विरागी जन परिचित है। अलौकिक सुख अनुभूत होने पर लौकिक सुख दु ख रूप प्रतिभासित होता है। लौकिक सुख पर सबध युक्त, सबाध, विच्छिन्न, विषम एव ससार का कारण है।

सुख - सु + ख मिलकर निष्पन्न है। सु = आनन्द, ख = आत्मा। अर्थात् आत्मानन्द का अपर नाम सुख है। आत्मानद अतीन्द्रिय निराकुल होता है। इसका अनुभव अतीन्द्रिय आत्मा से ही होता है। इन्द्रियो से अतीन्द्रिय आनद का अनुभव नही किया जा सकता है। वीतराग भावना से परिणित मुनिराज, रागादि रहित शुद्ध आत्म स्वभाव से उत्पन्न सुखामृत का एकदेश अनुभव करते हैं। उसी के फल स्वरूप उससे अनत गुना अव्याबाध सुख सिद्ध अवस्था मे निरन्तर होता रहता है।[१] वह सुख अतिशयरूप, अनुपम, अविच्छिन्न, निरतिशय, अक्षय अनत होता है।

दीक्षा के समय तीर्थकर देव निज शुद्ध आत्मा को अनुभवते हुए जो निर्विकल्प स्वानुभव करते हैं। वैसा ही सुख रागादि रहित निर्विकल्प समाधि मे लीन सभी मुनियो के होता है। इसलिए मुनियो को चलता-फिरता सिद्ध कहा जाता है। मुनि धर्म मे काल की अपेक्षा नही लगती है। सभी कालो मुनि धर्म एक जैसे ही होते हैं।

सिद्ध परमात्मा इन्द्रियातीत होने से उन्हे निराकुल सुख होता है। अतीन्द्रिय होने से आकुलता उत्पादक सभी कारणो का अभाव हो गया है। सभी प्रकार के दु खो का अभाव होने से वे पूर्ण सुखी है।[२]

शुद्ध आत्मा अनाकुल लक्षण ज्ञान स्वरूप सुखमय होता हुआ स्वयमेव परिणमन करता है। ज्ञान आत्मा का सहज स्वभाव होने से स्वय ही सुख रूप होता है। इसलिए सिद्धो को केवल ज्ञान है वह स्वय सुख भी है और परिणाम भी है।[३]

---

१ (प्र प्र मू १/११८ द्र स टी १४) २ (आ अनु ४६) ३ (प्र सा ६)

सिद्ध परमात्माओ को सर्व दु खो का अभाव होने से पूर्ण सुख हैं। सिद्ध परमात्मा के अतीन्द्रिय सुख समस्त विकल्पो से अतीत स्वाभाविक शुद्ध आत्म स्वरूप से उत्पन्न परम समाधि को प्राप्त आत्मानुभवरूप होता है। यह अविनाशी, नित्य, निरजन, केवल ज्ञान से भरपूर, शुद्धात्म भावना स्वरूप, वीतरागमय, निराबाध, निराकुल, अनुपम स्वरस का निरन्तर अखण्ड पान करते हैं। सर्व आत्म प्रदेश सुखमय हैं। सर्व आत्म प्रदेशो से सुखद अमृत झरता रहता है। यह अचिंत्य स्वाभाविक, स्वाधीन अष्ट गुणो से सहित अकषायत्व, अवेदत्व, अकारत्व, विदेहत्व, अचलत्व, अलेपत्व आदि गुणो से युक्त निर्दोष कृतकृत्य स्वात्मा मे ज्यो के त्यो अविचल रूप से सहज सुखामृत पान करते हैं।

चक्रवर्ती, भोगभूमिज, धरणेन्द्र, देवेन्द्र, अहमिन्द्र के क्रमश अनतगुणा सुख है। इन सभी का त्रिकाल मे होने वाला सुख एकत्रित करने पर भी, सिद्धो के एक क्षण मे होने वाले सुख का अनतवाँ भाग भी नही हैं। अर्थात् सिद्धो का सुख इन्द्रिय सुख से भिन्न जाति का है।

तत्व श्रद्धान से पथ बदल जायेगे ।।
मर गये न मरे हम अमर हो गये ।
भव धरे न कभी भव के बधन गये ।।
छोड़ सबध सब शुद्ध हो जायेगे ।। त प ।।
साथ अपने चले साथी अपने हैं कब ।
देह अपनी न जब कौन अपना है तब ।।
इक समय मे अरे सब बिछुड़ जायेगे ।। त प ।।
स्वार्थी यह जगत छोड़े मझधार पर ।
रज ना गम कोइ, ऐसे उपहार पर ।।
निज सुधा पान कर, वन चले जायेगे ।। त प ।।
राग से बन रहे, जग के सबध सब ।।
भेद स्व-पर का कर न रहे पर मे अब ।।
शुद्ध भावो के बल स्व मे रम जायेंगे ।। त प ।।
योग उपयोग को आत्म की ओर कर ।
ज्ञान निर्मल बना, ज्ञान का ध्यान धर ।।
लीनता को बढ़ा, भव मिटा जायेगे ।। त प ।।
भाव पर से रहित, चित् को ध्याते रहे ।
सुख निराबाध हो, ध्रुव अचल ही रहे ।।
कर्म रज को उड़ा, मुक्त हो जायेगे ।
तत्व श्रद्धान से, पथ बदल जायेगे ।

रमेशचन्द्र "बाझल"

देव-शास्त्र-गुरु-पूजा

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, जिन वाणी सुखकार ।
शुद्धात्म साधक दशा, तीन लोक हितकार ।।

ओम् ह्री देव-शास्त्र गुरु समूह अत्र अवतर अवतर सवोष्ठ।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। अत्र मम सन्निहतो भव-भव वषट्।

अज्ञान भाव से जन्म मरण, करता अनादि से हूँ आया।
निज ज्ञान भाव प्रगटाने को, अब शरण आपकी मैं आया।।
मुनि के मन जैसा जल अर्पित, मै जन्म मरण का नाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरु आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
ज्ञानावरणीय कर्म विनाशनाय जल

जग के कल्पित सबध देख, अत स्वभाव नहि लख पाया।
निज शुद्ध रूप सवेदन को, अब शरण आपकी मै आया।।
शीतल सुगन्ध चदन अर्पित, ससार ताप का नाश करू।
देव, शास्त्र, गुरु आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
दर्शनावरणीय कर्म विनाशनाय चदन

एकत्व ममत्व विभावो से, सुख रूप आत्मा नहिं पाया।
अक्षय अनत सुख पाने को, अब शरण आपकी मै आया।।
मोती समान तदुल अर्पित, ससार बीज का नाश करुँ।
देव, शास्त्र, गुरु आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
मोहनीय कर्म विनाशनाय अक्षत

तन के बल को अपना माना, निज का बल जान नही पाया।
चेतन का बल प्रगटाने को, अब शरण आपकी मै आया।।
चम्पा सा सुमन समर्पित है, हत काम वासना नाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरु आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
अतराय कर्म विनाशनाय पुष्प

इन्द्रिय भोगो मे मगन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द नहिं पाया।
सुख अव्याबाध की प्राप्ति को, अब शरण आपकी मैं आया।।
जग का नैवैद्य समर्पित है, सुख की बाधकता नाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरू आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
वेदनीय कर्म विनाशनाय नैवैद्य

जो देह मिली उस रूप हुआ, अपने स्वरूप को नहिं पाया।
अशरीरी रूप प्रगट करने, अब शरण आपकी मै आया।।
मणियो का दीप समर्पित है, शारीरिक रूण विनाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरू आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
नाम कर्म विनाशनाय दीप

कुल क्रत आचार विचारो से, भगवान समान न बन पाया।
अक्रिय स्वभाव को प्रगटाने, अब शरण आपकी मै आया।।
ये धूप की सुरभि कर अर्पित, असमान भाव का नाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरू आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
गोत्र कर्म विनाशनाय धूप

काषायिक परिणति के द्वारा, चारो गतियो मे भ्रम आया।
स्वाभाविक पचम गति पाने, अब शरण आपकी मै आया।।
जग के सारे फल अर्पित कर, सासारिक फल का नाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरू आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
आयु कर्म विनाशनाय फल

पर भावो मे न अपना पद, मै अब तक जान नही पाया।
अपना अबध पद पाने को, अब शरण आपकी मैं आया।।
ये अर्घ्य समर्पित करता हू, सारे व्यवधान विनाश करूँ।
देव, शास्त्र, गुरू आलम्बन से, भव के बधन का नाश करूँ।।
अर्घ्य

वीतराग जिनदेव हैं, स्यादवाद जिनवाणी।
शाति रूप निर्ग्रंथ गुरू, करे कर्म की हानि।।

: जयमाला :

दर्शन ज्ञान वीर्य सुखधारी, निजानद रस के अधिकारी।
नित्य निरजन हो अविकारी, सर्व शुद्ध गुण मगलकारी।।
सकल ज्ञेय के हो तुम ज्ञाता, पर द्रव्यो से कोई न नाता।
तीन लोक है तुम गुण गाता, मोक्षपुरी के हो तुम दाता।।
नय प्रमाण से तत्व सिखाया, सबका सत्व स्वतत्र दिखाया।
कर्म अचेतन रूप बताया, उसका फल रागादिक आया।।
विषय कषाय बिना हो स्वामी, पर उपकारी हो जग नामी।
सकल शुद्ध भावो के स्वामी, ध्याता ध्यान निरजन नामी।।
बाहर मे उपयोग न जावे, चेतन भाव ज्ञान बन आवे।
सब आश्रव निरोध हो जावे, निज मे ही अक्षय पद पावे।।
मै अति निर्मल भाव बनाऊँ, सुधामयी परिणति को पाऊँ।
चित स्वभाव मे चित्त रमाऊँ, बाधा रहित सदा सुख पाऊँ।।
ओम् ह्री श्री देव शास्त्र गुरूभ्य पूर्णार्घ्यं

दोहा

देव-शास्त्र-गुरू के स्वरूप को, जो नित भावो से ध्याता।
सकल मनोरथ पूरे होते, मोक्ष धाम को पा जाता।।
पुष्प

रमेशचद बाझल

एक समय की कमाई तू अनन्त काल खाएगो

दया दान पूजा शील पूँजी सो अजान पने,
जितनो हस तू अनादि काल में कमायगो ।
तेरे बिन विवेक की कमाई न रहे हाथ,
भेद ज्ञान बिना एक समय मे गमायगो ।।
अमल अखँडित स्वरूप शुद्ध चिदानन्द,
याके वणिज माहि एक समय जो रमायगो ।
मेरी समझ मान जीव अपने प्रताप आप,
एक समय की कमाई तू अनन्त काल खायगो ।।

(प बनारसीदास)

सिद्ध पूजन

चित् स्वभाव अनुभूति से प्रगट सिद्ध चिद्रूप।
निजानद रस मगन हैं वन्दो सिद्ध सद्रूप।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने अत्र अवतर अवतर सवौषट्।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने अत्र तिष्ठ ढ ढ।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मैं ज्ञान भाव को बिन समझे, अज्ञान भाव मे नित अटका।
पर मैं अपनी प्रतीति द्वारा, ससार भवन मे ही भटका।।
मैं ज्ञान स्वभावी हूँ चेतन, निज आत्म जानने हूँ आया।
स्व ज्ञान अनत प्रगटाने को, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने ज्ञानावरणीय कर्म विनाशनाय जल निर्वपामती स्वाहा

जड़ चेतन का सम्बध बना, स्वागो मे नित ही लिप्त रहा।
अत प्रकाश नहिं होने से, स्व को बिन देखे भ्रमित रहा।।
मैं दर्श स्वभावी हूँ चेतन, चित् दर्शन करने हूँ आया।
दर्शन अनत प्रगटाने को, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने दर्शनावरणीय कर्म विनाशनाय चन्दन

अपने भावो से विमुख हुआ, तन को ही अपना मान लिया।
उसके हित का नित ध्यान रहा, अपना न कभी श्रद्धान किया।।
मैं सम्यक्त्व स्वभावी हूँ चेतन, समकित सुख पाने हूँ आया।
परमावगाढ़ समकित पाने, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने मोहनीय कर्म विनाशनाय अक्षतं

जड़ के वैभव की ममता से, भौंरा सा कमल मे बास किया।
अपना बल ज्ञात न होने से, शुद्धात्म सिद्धि मे विघ्न किया।।
मैं वीर्य स्वभावी हूँ चेतन, बलशाली बनने हूँ आया।
अपना अनत बल प्रगटाने, अब सिद्ध शरण मे मै आया।।

ओम् ह्री श्री सिद्ध परमेष्ठिने अन्तराय कर्म विनाशनाय पुष्प

साता का वेदन सुख समझा, सुख की प्रतीति नहिं कर पाया।
इद्रिय भोगो मे मगन रहा, स्वाभाविक सुख को नहिं पाया।।
मैं सुखद स्वभावी हूँ चेतन, निज सुख मे रमने हूँ आया।
सुख निराबाध की प्राप्ति हेतु अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने वेदनीय कर्म विनाशनाय नैवेद्य

मैं लोक अलोक प्रमाण मयी, जड़ काया मे सकुचित हुआ।
आकार रहित होने पर भी, इन्द्रिय के वश आकार हुआ।।
मैं सूक्ष्म स्वभावी हूँ चेतन, अशरीरी बनने हूँ आया।
सूक्ष्मत्व पूर्ण प्रगटाने को, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्री श्री सिद्ध परमेष्ठिने नाम कर्म विनाशनाय दीप

आचार विचारो से जग मे, है ऊँच नीच व्यवहार हुआ।
भावो मे सब न समान हुये, भगवान भक्त मे भेद हुआ।।
मैं अगुरुलघु स्वभाव मय हूँ, निज रूप रमण को हूँ आया।
गुण अगुरुलघु की प्राप्ति हेतु, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने गोत्र कर्म विनाशनाय धूप

शुभ अशुभ विभावो के द्वारा, ससार भ्रमण का चक्र चला।
परिपूर्ण चरित्र न होने से, भव धारण का ही बध चला।।
मैं अवगाहन स्वभावी हूँ चेतन, परिपूर्ण मुक्ति को हूँ आया।
अवगाहन गुण की प्राप्ति को, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने आयु कर्म विनाशनाय फल

आठो कर्मों का फल दुख रूप, भ्रम से सुख भासित होता है।
अपने वैभव के ज्ञान बिना, पर वैभव मे नित सोता है।।
मैं हूँ अपने में स्वय पूर्ण, निज वैभव पाने हूँ आया।
निज अष्ट गुणो की प्राप्ति को, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं

दोहा

सिद्धो के गुण गान से, शिव पथ साधन होय।
शुद्धात्म के ध्यान से, सहज मोक्ष पद होय।।

. जयमाला :

वस्तु स्वरूप ज्ञान मे आया, निज हित मे ही चित्त समाया।
दर्शन ज्ञान चरित्र को भाया, स्वानुभूति आनद रस पाया।।
सहज भाव के गीत सुहाये, शिवकारी शिव पथ मे आये।
आत्म शुद्धि का सम्बल पाये, शुद्ध ब्रह्म शिवनाथ कहाये।।
चौबीस भेद परिग्रह छोड़ा, विषय भाव से मुँह को मोड़ा।
शुद्ध भाव मे निज को जोड़ा, पर परिणति से नाता तोड़ा।।
द्रव्य स्वभाव समान विचारा, पर मे से उपयोग उवारा।
निज स्वभाव साधन के द्वारा, कर्म कलक किया सब न्यारा।।
अनत चतुष्टय को प्रगटाया, वीतराग अरहत कहाया।
समवशरण इन्द्रों ने रचाया, तीन लोक ने तुम गुण गाया।।
दर्शन आदि आठो गुणधारी, हुये शिवालय के अधिकारी।
पूर्ण शुद्ध तुम हो अविकारी, कहलाते जग के उपकारी।।
ज्ञान स्वरूप स्वभाव तुम्हारा, लोक अलोक झलकवे सारा।
निज अनुभव साक्षात् निहारा, अखिल विलोकी दर्शन धारा।।
शुद्ध भाव निज रूप सगाया, पूर्णशुद्ध समकित को पाया।
निर्मल चेतन भाव बनाया, सहज अनत वीर्य को पाया।।
ज्ञानानद परम रस लीना, निराबाध सुख होय नवीना।
ज्ञान शरीर अतीन्द्रिय लीना, सूक्ष्मत्व भाव प्रगट है कीना।।
सदाकाल तुम हो अविकारी, उत्तम अगुरु लघु गुण धारी।

हैं प्रकाश सम क्षेत्र प्रसारी, सत्ता भिन्न अवगाहन धारी।।
दीक्षा क्षण तीर्थंकर भाया, यथा जात निज रूप धराया।
निज मे ही उपयोग जमाया, निजानद अनुभव रस पाया।।
सिद्ध स्वभाव सदामन लाओ, अपना आवागमन मिटाओ।
सहज स्वभाव भावना भाओ कर्म नशाय सिद्ध पद पाओ।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने पूर्णार्घ्यं

दोहा

अविनाशी अविकार सहज सुख धाम है।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध जगत अभिराग है।।

ओम् ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिने पुष्पाँजलि

कुन्द कुन्द आचार्य देव के,
परमागम वरदान हैं।
जो भी जीव मनन करते है
कर लेते कल्याण हैं।।
प्राकृत गाथा बद्ध ग्रन्थ हैं,
कहैं धर्म का मर्म है।
चेतन से सबध नही है
पुद्गलमय ये कर्म है ।।
श्रवण पठन समता उपजाते,
स्व स्वभाव समझाते हैं।
स्व-पर भेद विज्ञान कराते,
शिवपुर राह दिखाते हैं।।
मुनिजनो के भाव प्रदीपक,
स्व अध्यात्म बताते हैं।
स्वानुभूति मे रमण कराते,
अक्षय सुख प्रगटाते हैं।।
स्याद्वादमय तत्व निरूपक,
जिन वचनो के सार हैं।
सर्व शुद्धता प्रगटाने को,
परमागम ही सार हैं।।

रमेशचन्द्र "बाझल"

"चौबीसी - पूजा"

सर्व हितकर भाव से तीर्थंकर पद पाय ।
दिव्य देशना है खिरी, वन्दो शीश नवाय ।।

ओम् ह्री श्री वृषभादिक चौबीस तीर्थंकराय अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ओम् हीं श्री वृषभादिक चौबीस तीर्थंकराय अत्र तिष्ठ ठ ठ।
ओम् ह्री श्री वृषभादिक चौबीस तीर्थंकराय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चाल चौबीसी पूजा

शुद्धात्म विज्ञान विहीन प्रतिक्षण मरण किया ।
अमृत मय सम्यक ज्ञान स्व को अमर किया ।।
पूजो चौबीस जिनेश, मुनिव्रत ग्रहण करूँ ।
प्रगटाऊँ सुधा चिदेश, मोक्षपद प्राप्त करूँ ।। जल

निज के सवेद विहीन, जग सताप सहा ।
स्वका सवेदन भाव दर्शन शुद्ध महा ।।
पूजो प्रगटाऊँ चन्दन

मिथ्यात्व असयम भाव भव की वृद्धि करे ।
निज वीतराग परिणाम, स्व मे लीन करे ।।
पूजो प्रगटाऊँ अक्षत

पर आश्रित होते भाव बल का दमन करे ।
शुद्धात्म स्वरूपी भाव निज मे अचल करे ।।
पूजो प्रगटाऊँ पुष्प

इन्द्रिय के भोग सबाध हिम सम नाश लिये ।
निज निराबाध परिणाम सुख बिन बाध लिये ।।
पूजो प्रगटाऊँ नैवेद्य

इन्द्रियाकार निजमान उस मय बना रहा ।
इन्द्रिय अतीत सूक्ष्मत्व, निज मे समा रहा ।।
पूजो प्रगटाऊँ दीप

परिणाम शुभाशुभ रूप, पद असमान करे ।
शुद्धोपयोगमय भाव सिद्ध समान करे ।।
पूजो प्रगटाऊँ धूप

इस भव कानन के बीच, अपद मे दुख सहा ।
अवगाहनत्व आकार ज्ञान समान रहा ।।
पूजो प्रगटाऊँ फल

सब कर्म महा दुख रूप, अशुचि पर्याय धरे ।
निज सहजभाव चित धार, सर्वत शुद्ध करे ।।
पूजो प्रगटाऊँ अर्घ्य

\- दोहा -

तीन लोक मे पूज्य हो, शिवकारी शिवरूप ।
शिवपुर के उपदेश से मुनियो के हो भूप ।।

जयमाला

शात दिगम्बर मुद्रा धारी, नित्य निरजन हो अविकारी ।
मोक्षमार्ग के हो अधिकारी, तीन जगत के मगलकारी ।।१।।
शुद्ध भाव मे ध्यान लगावे, कर्म घातिया क्षय हो जावे ।
दर्शन ज्ञान वीर्य सुख पावे, वीतराग अरहत कहावे ।।२।।
निर्विकार चैतन्य स्वरूपी, निज अनुभूति मगन चिद्रूपी ।
सहजानद रसमय सद्रूपी, शुद्धात्म हो सिद्ध स्वरूपी ।।३।।
सकल ज्ञेय के हो प्रभु ज्ञाता, फिर भी पर से कोई न नाता ।
तीन लोक है तुम गुण गाता, मोक्षधाम के हो तुम दाता ।।४।।
समवशरण शोभा अति पावे नर पशु देव सभा मे आवे ।
अक्षर रहित दिव्य ध्वनि होवे श्रवण मात्र बधन को खोवे ।।५।।
नय प्रमाण श्रुत ज्ञान बताये, सर्व भाव प्रतिबोध कराये ।
जिनवर की स्तुति जो गाये, तत्क्षण कर्म बध नही आये ।।६।।
तीर्थंकर सम भाव बनाऊँ परमानद दशा प्रगटाऊँ ।
शुद्ध सिद्ध अपना पद पाऊँ अब नही लौट जगत मे आऊँ ।।७।। पूर्णार्घ्य

- - - o - - -

चौबीसो जिनराज की, महिमा अपरपार ।
भव के भाव अभाव को शुद्ध धर्म चित धार ।।

(रमेशचन्द्र बाझल)

परमात्म पूजन

सौभाग्य मुझे कब मिल पाये, सन्निकट आपके आ जाऊ
प्रभु शाति प्रदायक परमातम शीतल मन मे प्रभु पधराऊँ

ओम् ह्री श्री परमात्माय नम अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ओम् ह्री श्री परमात्माय नम अत्र तिष्ठ ढ ढ।
ओम् ह्री श्री परमात्माय नम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निज जन्म मरण का रोग रहा, अब तक नहिं इसे मिटा पाया ।
प्रभु रोग निवारक तुम्हे जान, मैं औषिध लेने हूँ आया ।।
क्षीरोदधि का जल अर्पितकर, मैं जन्म मरण का नाश करु ।
मैं शरण आपकी आया हू, भवसागर को अब पार करु ।। जल
भव चाह दाह बढ़ जाने से, अगणित दुख मैने पाये हैं ।
पर चाह दाह नहिं मिट पायी, परके गीतो को गाये हैं ।।
मलयागिरि चदन अर्पित कर, ससार ताप का नाश करु ।
मैं शरण आपकी आया हू, भवसागर को अब पार करु ।। चदन
ससार मोह का सागर है, यह नरभव नाव भटकती है ।
सकल्प विकल्प की लहरो मे, मम आतम शक्ति अटकती है ।
ये उज्जवल अक्षत अर्पितकर निज अक्षय पद को प्राप्त करु ।
मैं शरण आपकी आया हू, भवसागर को अब पार करु ।। अक्षत

कामादिक विष को पीने से, सुख सुधा पान नहिं कर पाया ।
हत काम वासना से बचने, घबरा कर चरणो मे आया ।।
ये कुसुम सुकोमल अर्पित कर, निष्काम अवस्था प्राप्त करु ।
मैं शरण आपकी आया हू, भवसागर को अब पार करु ।। पुष्प
मैं क्षुधा रोग से ग्रसित रहा, चारो गतियो मे भ्रम आया ।
षट रस के सेवन करने से, सतृप्त क्षुधा नहिं कर पाया ।।
नैवेद्य सुव्यजन अर्पित कर, मैं क्षुधा रोग का नाश करु ।
मैं शरण आपकी आया हू, भवसागर को अब पार करु ।। नैवेद्य
मिथ्यात्व नशे मे चूर हुआ, आपापर को नहिं पहचाना ।
मोह महातम में पड़कर, मुक्ति का मार्ग नही जाना ।
यह दीप समर्पण करके प्रभु अन्तर मे ज्ञान प्रकाश करु ।
मैं शरण आपकी आया हू, भवसागर को अब पार करु ।। दीप
कर्मों की ज्वाला में पड़कर, चैतन्य भाव है झुलस रहा ।
निःसहाय अवस्था होने से, भव बधन मे ही उलझ रहा ।।
ये धूप अनल मे क्षेपणकर, कर्मों से आत्म स्वतत्र करु ।
मैं शरण आपकी आया हू भवसागर को अब पार करु ।। धूप
कर्मानुसार सब लौकिक फल मैने अनादि से भोगे है ।
विषयो मे तनमय हो करके, रागादिक भाव सजोये है ।।
छह ऋतु के सब फल अर्पितकर, निर्वाण महाफल प्राप्त करु ।
मैं शरण आपकी आया हू भवसागर को अब पार करु ।। फल
जल फल वसु द्रव्य मिला करके यह अर्घ्य बनाया है प्रभुवर ।
बन सकू अतुल मैं तुम जैसा यह करु भावना है जिनवर ।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु अक्षय अनर्घ पद प्राप्त करु ।
मैं शरण आपकी आया हू भवसागर को अब पार करु ।। अर्घ्य
तीन भुवन के जीव को वीतराग है सार ।
परमातम पद घ्याइये होवे मगलाचार ।।

जयमाला

तुम तीन लोक के हो स्वामी ज्ञाता दृष्टा अन्तर्यामी ।
जग की बाधाये छूट गयी तुम हुये निरामय शिवगामी ।।
सयोग भोग के अगणित थे, सब हेय समझ वैराग्य लिया ।
अक्षय अखण्ड सुख प्राप्ति को पर से ममता का त्याग किया ।
आपा पर का कर भेद ज्ञान निज निजानद रस पान किया ।
सकल्प विकल्प जला करके अक्षय सुख का व्यपदेश लिया ।
आतम का नित चिन्तन करके, भव के बधन का नाश किया ।
हो गये सर्वज्ञ वीतरागी परमातम पद को प्राप्त किया ।
तुम को लखकर है अभिलाषा, मैं भी स्वरूप का ध्यान धरु ।
परमातम पद की प्राप्ति हेतु शुद्धात्म भाव मे रमण करु । पूर्णार्घ्य
पूजन के नित करन से विषयासक्ति हो मद ।
आपा पर के भेद हो नाशे चर्तुगति फद ।।

रमेशचन्द्र बाझल